गायत्री तत्त्व महिम्न

विश्वामित्रर्षिणा दृष्टां विश्वमित्रस्वरूपिणीम् ।
प्रणौमि व्याहरन् देवीं गायत्रीं शिरसा सदा ॥

गायत्रीकी कुछ विशेष मीमांसा आप सबके समक्ष अभिव्यक्त की जाती है। सार्वजनिक सभाओंमें गायत्रीपर प्रवचन करनेके लिये सामान्यतया पण्डित लोग

हिचकिचाते हैं, यहां तक कि रुद्रीपाठके समय गायत्री मन्त्रके आनेपर मन मनमें पढ़ते हैं, अन्य मन्त्रोंके समान प्रकट उच्चारण नहीं करते। अधिकार की बात सामने आती है। किन्तु इतनी बात तो निश्चित है कि गायत्री विश्वहितकारिणी है। इसके द्रष्टा विश्वामित्र ऋषि थे। विश्वामित्र यह नाम इसी गायत्री मन्त्रके कारण सार्थक हुआ। विश्वका जो मित्र है वही विश्वामित्र है| **"मित्रे चर्षो"** इस पाणिनीय सूत्र से विश्व शब्द के अकारको दीर्घ होनेसे विश्वमित्रकी जगह विश्वामित्र हो जाता है। विश्वका मित्र ही विश्वामित्र है। जो विश्वसे स्नेह रखता हो, जो विश्व का उपकार करता हो वही विश्वामित्र है। विश्वामित्रने विश्वका उपकार कैसे किया? किसके द्वारा किया? इसमें कोई अन्य सुदृढ़ प्रमाण नहीं हैं। यही एक प्रमाण है कि उन्होंने गायत्री मन्त्रका दर्शन किया और संसार को बताया। अतः विश्वहितकारिणी होनेसे आप सब सर्वसाधारणतक गायत्रीका सन्देश पहुंचाना उचित ही होगा।

ऋषिका अर्थ है मन्त्रद्रष्टा। **"ऋषयो मन्त्रद्रष्टार:"** ऐसा

वचन आता है। तपश्चर्या करते-करते जब हृदय अत्यन्त पवित्र होता है तब हृदयमें प्रातिभ ज्ञान उत्पन्न होता है। उस प्रातिभज्ञानमें यथार्थ तत्त्व प्रतिभासित होता है। ऐसे प्रातिभज्ञानमें वेदमन्त्रोंका भी प्रतिभान होता है। यह प्रातिभज्ञान प्रायः ऋषियोंको ही होता है जिनका हृदय तप करते-करते पवित्र हो गया है। कई बार साधारण व्यक्तियोंको भी प्रातिभज्ञान होता है। प्रातिभ या आर्ष नामक इस ज्ञानके बारेमें वैशेषिक दर्शनके भाष्यकार महर्षि प्रशस्तपाददेवाचार्य कहते हैं-

"तत्तु प्रस्तरेण देवर्षीणां, कदाचिदेव लौकिकानाम् । यथा कन्यका ब्रवीति श्वो मे भ्राताऽऽगन्तेति हृदयं मे कथयतीति॥"

अर्थात् यह प्रातिभज्ञान अधिकतर देव और ऋषियोंको ही होता है। लौकिक जनोंको कभी-कभी होता है। जैसे एक छोटी कन्या कहने लगी मेरा भाई विदेश से कल आयेगा। किसने कहा तेरेको ? मेरा हृदय कहता है। सचमुचमें उसका भाई दूसरे दिन आ गया। वह ज्ञान कौनसा था? वही प्रातिभज्ञान है।

एक बार की बात है - एक लड़का सूरतसे दिल्ली जानेवाला था| टिकट आ चुका था। उसके दो मित्र भी दिल्ली जा रहे थे। उनके भी टिकट आये हुये थे। अचानक उसकी मां ने कहा बेटा आज मत जा| उसने कहा कि टिकट आ गया है, सब तैयारी हो गयी है, अब क्या बोल रही है, मत जा| तेरी आदत ही ऐसी है कि ऐन मोकेपर गड़बड़ करती है| साथियोंके भी टिकट आ चुके हैं, मुझे तो जाना ही पड़ेगा। माँ ने कहा जो भी हो लेकिन आज मत जा। आगे तेरी मर्जी है। आज मेरी बात 12 मान ले। माँ रोने लगी। लड़का बहुत नाराज हो गया, किन्तु माँ ने जाने नहीं दिया। उसके दोनों मित्र गये। यह माँको कोसता रह गया। परन्तु दूसरे दिन अखबारमें खबर आयी कि फ्रंटियर मेल का एक्सिडेंट हो गया। उन दो अभागोंका भी उसमें पता नहीं रहा। आगे जो भी हुआ हो किन्तु उस माँ के मनमें यह ज्ञान कैसे हुआ कि कोई भारी अनिष्ट होने जा रहा है? केवल उस माँ की ही बात नहीं। बहुत से लोगों के जीवन में ऐसी छोटी-मोटी घटनायें होती रहती हैं।

अचानक कोई स्फुरणा होती हैऐसा नहीं, ऐसा होना चाहिये। और उसमें चामत्कारिक परिणाम भी भूमिका सामने आता है। इसीको प्रातिभज्ञान कहते हैं। यह पुण्यविशेषका ही परिणाम है।

तपश्चर्यासे ऋषियों को प्रातिभज्ञान होता था। उसमें जो अक्षर, पद, वाक्यादि स्फुरित होते थे वे ही मन्त्र हैं। उस माँ ने अपने ज्ञानसे रेल दुर्घटना को उत्पन्न नहीं किया था, किन्तु भावी दुर्घटनाको आभासरूपसे केवल देखा। उसी प्रकार इन मन्त्रोंको ऋषियोंने उत्पन्न नहीं किया, बनाया नहीं, किन्तु प्रातिभज्ञानसे केवल देखा । मन्त्र अनादिकाल सिद्ध हैं। बनाये गये नहीं। ऋषि मन्त्रके रचयिता नहीं, मन्त्रके द्रष्टा हैं। लोग समझते हैं कि ऋषि विरचित होने से मन्त्रोंका महत्व है। जैसे व्यासविरचित होनेसे महाभारतादिका महत्व है। यहां विपरीत है। मन्त्रद्रष्टा होनेसे ऋषियोंका महत्व है। मन्त्रद्रष्टा होनेसे ऋषि ऋषि कहलाये। यही लौकिक और वैदिक ग्रन्थोंमें फरक है| लौकिक ग्रन्थोंका महत्व रचयितापर आधारित है परन्तु

वैदिक ग्रन्थों में मन्त्रोंसे द्रष्टाका महत्व होता है। इसी प्रकार सभी वेद मन्त्र अनादि सिद्ध हैं। अपौरुषेय हैं, महान हैं। सर्वाधिक महान मन्त्र गायत्री मन्त्र है। उस गायत्री मन्त्रके द्रष्टा होनेसे विश्वामित्रका वास्तविक विश्वामित्र नाम हुआ। गायत्री मन्त्र विश्वकल्याणकारी है। अतएव उसके द्रष्टा, आविष्कर्ता विश्वके मित्र हुये।

मित्रका एक अर्थ सखा होता है। सखाका मतलब है - बिना स्वार्थ, अहेतुक स्नेह रखनेवाला तथा उपकार करनेवाला। पति, पुत्र, माता, पिता आदि सभी स्नेह करते हैं किन्तु कहीं स्वार्थसे और कहीं सम्बन्धसे स्नेह करते हैं और उपकार करते हैं। किन्तु मित्रका मित्रके साथ स्नेह ऐसा नहीं। सच्ची मित्रता अहैतुक होती है। वहाँ परस्पर रक्त सम्बन्ध नियत नहीं है। प्रत्युपकार निश्चित नहीं है। अकारण ही मित्रता शुरू हो जाती है। कभी-कभी सकारण भी होती है। परन्तु सकारण ही हो ऐसा कोई नियम नहीं है। सयाने होनेके बाद अधिकतर सकारण ही मित्रता होती है। किन्तु दो बच्चोंकी स्कूलमें मित्रता होती है तो किसी

कारणसे नहीं, स्वाभाविक ही होती है। सकारण मित्रता भी सच्ची होनेपर बादमें अकारणके समान ही हो जाती है। वही स्थायी और यथार्थ होती है। संतोंने मित्रका लक्षण इस प्रकार किया है कि

पापान्निवारयति योजयते हिताय

गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति ।

आपद्गतं च न जहाति ददाति काले

सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥

यद्यपि डाकुओंमें भी मित्रता होती है और गाढ मित्रता, यहां तक कि अपना सिरं देकर भी मित्रकी रक्षा कर डालते हैं, फंसने नहीं देते। किन्तु वह सन्मित्र नहीं है। वह असत् मित्र है। सत् मित्र तो अपने मित्रको पाप करनेसे रोकता है। और हितकार्यमें जोड़ता है। अर्थात् मित्र के भविष्यको वह सुधारता है। वर्तमान में उसकी गोपनीय बातोंको गुप्त रखता है और मित्रके गुणोंका बखान करता है। ऐसा नहीं कि मुखपर प्रशंसा की और पीठपीछे निंदा की। मित्रकी असली परीक्षा आपत्तिमें होती है। इस संदर्भ में एक संत की घटना यहाँ अविकल वर्णित है- **"हमें मलेरिया बुखार**

एक दिन छोड़कर तीसरे दिन आता था। बहुत दिनोंतक चला | सह्याद्रिके तलहटीकी बात है। एक मित्र मिल गया था। पैदल यात्रा करते थे। तीन घंटेका बुखार आता था। बुखार आनेसे पहले ही चावलसे कांजी बनाकर हमने रखी। इतनेमें बुखार आ गया। कांपने लग । लेट गया। हमारे मित्रने सोचा इसके साथमें रहना आफत है। कांजी पीकर चलता बना| तीन घंटे के बाद बुखार उतरा, आँख खोलकर देखा तो मित्र नहीं था। मैंने सोचा नहाने गया होगा, आनेपर दोनों कांजी पियेंगे। बड़ी भूख प्यास लगी थी। प्रतीक्षा करते-करते काफी समय बीत गया। फिर सोचा मित्रके लिये कांजी रख देंगे, अपना तो थोड़ी पी ही लेते हैं। हंडा खोलकर देखा तो खाली था। मैं छटपटाता रह गया।

अस्तु, ऐसे मित्रोंकी बात भर्तृहरिजी नहीं कर रहे। वे कहते हैं आपद्गतं च न जहाति। आपत्तिमें मित्रको नहीं छोड़ते और सबसे बड़ी बात है - ददाति काले । 'गृह्णाति काले नहीं कहा। लेना लाचारीमें है। लेते भी हैं किन्तु मनमें देने की भावना रहती है। विश्वामित्रजीने गायत्री का आविष्कार कर इन सब गुणों को अपनेमें उतारा। गायत्रीसे पापोंकी

निवृत्ति और परम हितकी प्राप्ति होती है। अवगुण नष्ट होकर छिप जाते हैं और सद्गुण गायत्रीसे प्रगट होते हैं। सबसे बड़ी आपदा मृत्यु है। उस समयमें गायत्री ही परम सहाय है। जीवनमें भी आपदाओंसे यह मुक्त करती है। विद्यादानसे बढ़कर क्या दान हो सकता है? गायत्री तो ब्रह्मविद्याप्रदान करनेवाली है। इसे पूरे विश्वको देकर विश्वामित्र विश्वके मित्र हो गये।

मित्र शब्दका दूसरा अर्थ सूर्य है। सूर्यके विषयमें आगे मन्त्रके व्याख्यानके अवसरमें बहुत कुछ बताया जायेगा। यहाँ तो संक्षेपतः यही कहना है कि सूर्य प्रकाश करनेवाला है। अंधकारको दूर हटानेवाला है। आकाशस्थ सूर्य पूरे विश्वको प्रकाश देता है। 'कर्मसाक्षी जगच्चक्षुः" इस प्रकार सूर्यके लिये बताया है। वह जगतका चक्षु है। दिखानेवाला है। अंधकारको पूरी तरहसे सूर्य ही हटाता है। दीपकादि तो थोड़ा बहुत अन्धकार दूर करते हैं। किन्तु पूरी तरहसे नहीं। महर्षि विश्वामित्रने भी जगत् को प्रकाश दिया, और अंधकार मिटाया | कौनसा प्रकाश ? कौनसा अन्धकार?

विश्वामित्रने ज्ञानप्रकाश दिया अज्ञानान्धकार मिटाया| किससे? इसी गायत्री मन्त्रसे। गायत्री मन्त्र कर्म तथा ब्रह्म दोनोंका प्रकाशक है। कर्मका प्रकाशन करते हुये कर्मजन्य समस्त विश्वका प्रकाशन किया। ब्रह्मका प्रकाशन कर परमार्थतत्त्वका प्रकाशन किया। उसके द्वारा अज्ञानान्धकारको गायत्री मन्त्रने मिटाया। इस मन्त्रको प्रदान कर विश्वामित्रने ज्ञानसूर्यका उदय कराया। हृदयमें प्रकाशको प्रसारित किया। अज्ञानको मिटाया| इसलिये विश्वामित्र विश्वके लिये सूर्यरूप हो गये।

पूर्वोक्त पद्धतिसे गायत्री मन्त्र स्वयं भी विश्वका मित्र है। गायत्री मन्त्रके द्वारा ही विश्वामित्र ऋषि यथार्थतः विश्वामित्र हुये। गायत्री मन्त्र पापनिवारण करता है और परमहित करता है। जो इसका जप, ध्यान, अर्थानुसंधानादि करता है उसे महापुण्य देता है। पापरूपी गुह्यको छुपा देता है। नाश तो वस्तुतः छुपना ही है। 'णश् अदर्शने" अदर्शन ही तो नाश हैं, वही छिपना भी है। गायत्री समस्त सद्गुणोंको उद्भूत करती है। सांख्य मतानुसार

अभिभूत होकर सबमें सद्गुण भी पड़े हुये हैं। उनका उद्भव गायत्री जपसे होता है। यह संसाररूपी जन्म मरण आपदासे ऊपर उठाती है और परिपक्व होनेपर कालमें मोक्ष प्रदान करती है। इस प्रकार गायत्री मन्त्र विश्वका सन्मित्र हुआ।

विश्वका यह महामन्त्र मित्र-सूर्य है। इस मन्त्रका देवता सूर्य है। 'मन्त्रात्मानो देवताः' इस मीमांसा सिद्धान्तानुसार सूर्यात्मक मन्त्र है। मन्त्रात्मक सूर्य है। इस प्रकार गायत्रीमें मुख्यार्थ सूर्यरूपता संगत है और आध्यात्मिक दृष्टिसे ज्ञानप्रकाश देकर और अज्ञानान्धकार मिटाकर भी यह सूर्यरूप है। संपूर्ण वेदार्थ गायत्रीमें निहित है। गायत्री वेदमाता है। **"स्तुता मया वरदा वेदमाता"** इत्यादि वचनोंमें स्पष्टतया गायत्रीको वेदमाता बताया है। वेदमाता इसलिये कि वेदोंके संपूर्ण अर्थ गायत्रीमें निहित हैं। इसलिये मन्त्र भी विश्वामित्र है। प्रश्न होगा कि मन्त्रको विश्वामित्र कैसे कहेंगे? व्याकरण सूत्रकार **'मित्रे चर्षौ'** इस सूत्रमें ऋषि अर्थमें विश्व शब्दको दीर्घ अन्तादेश कहते हैं। ठीक है|

मन्त्रको भी ऋषि कहते हैं। "**तदुक्तमृषिणा**" इस प्रयोग में ऋषिका मन्त्र अर्थ है। इस बातका समर्थन व्याकरणादिके ग्रन्थोंमें सुप्रसिद्ध है।

सूर्यदेवता भी विश्वका मित्र है। पूषा नाम जगतका पोषणकारी होनेसे पड़ा| प्रचोदन सत्कर्मादि प्रेरण सूर्य करता है। वह प्रकाश प्रदान करता है और अन्धकारको दूर करता है। **मन्त्रात्मानो देवताः** इस मीमांसा सिद्धान्तमें देवता मन्त्रस्वरूप हैं। मन्त्रको ऋषि कह सकते हैं तो तदात्मक सूर्य भी ऋषि ही है। इस प्रकार मन्त्रद्रष्टा, मन्त्र एवं देवता तीनों ही विश्वामित्र ही हैं। मुख्य इनमें मन्त्र ही है। वह अनादि अनन्त अपौरुषेय है। उसी के कारण देवता मन्त्रात्मा हो गया। उसीके कारण मन्त्रद्रष्टाकी महिमा हुई। सर्वथा यह तो निश्चित है कि गायत्री विश्वहितकारिणी है। सर्वोपकारिणी है।

जो लोग अधिकारकी बात करते हैं वे भी ज्ञानका निषेध तो नहीं ही कर सकते| अपशूद्राधिकरणमें भगवान् आदि

शंकरचार्य स्वयं कहते हैं कि ज्ञान वस्तुतन्त्र होनेके कारण किसीके लिये भी उसका निषेध नहीं किया जा सकता। अनादि कालसे सभी असंख्य जन्म ले चुके हैं। उनमें कभी भी कोई द्विज नहीं ही हुआ ऐसा कहना असंभव है। गायत्र्यादि श्रवण भी उस समय किया ही होगा। वर्तमानमें गायत्रीके अध्ययनसे ज्ञानको प्राप्त द्विज उस ज्ञानका उपदेश करेगा तो पूर्वाधीत संस्कारोद्बोधसे शूद्रादि सबको ज्ञान हो सकता है। अतः गायत्री विश्वोपकारिणी है इस बातका निराकरण कट्टर अधिकारवादी भी नहीं कर सकते। मतान्तरमें तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

"धियं प्रचोदयन्ती या सत्कर्मोपास्तिवित्तिषु ।

प्रवर्तयति लोकान् सा गायत्री मे परा गतिः ॥

गायत्रीके बारेमें हमने यहांतक देखा कि वह विश्वहितकारिणी है जिसके कारण ही विश्वामित्र सार्थक मित्र बने| परन्तु वह विश्वहितकारिणी किस प्रकार है? वह पापसे मनुष्यको विमुख करती है, हितमें जोड़ती है इत्यादि हेतु भी दिखाया। परन्तु यह सब सिद्धवत् निर्देश मात्र है। प्रात्यक्षिक अनुभव नहीं है। जैसे पाप करनेके लिये जाते

हुये मित्रको मित्रने हाथ पकड़कर कहा- मित्र ! ऐसा मत करो। इस प्रकार गायत्री हाथ पकड़कर किसीको पापसे रोकती नहीं, पुण्य कराती नहीं, तब किस प्रकार मित्रका काम यह पूरा करती है? कौनसा विशिष्ट कार्य यह संपन्न करती है? इसका उत्तर पानेके लिये हम श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्धके एक श्लोकपर थोड़ा विचार करेंगे। श्लोक है-

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या

वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान् ।

तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय

ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ।

·इसका भावार्थ यह है कि परमेश्वरने प्रथम अनेकविध शरीरोंको बनाया| पहले अचर वृक्षादि योनिको जन्म दिया। फिर चर कीड़े, सांप आदि और व्याघ्र सूकरादि पशुओंको जन्म दिया। थलचरके बाद नभचर पक्षी, पतंग, काक, कोकिलादि को जन्म दिया। जलचर मछली आदिको जन्म

दिया। परन्तु इन सबसे परमात्माको संतोष नहीं हुआ। अन्तमें परमेश्वरने मनुष्योंको जन्म दिया। तब उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। आनन्द हुआ| आधुनिक विकासवादी भी ऐसा ही कहते हैं। पहले मछलीका जन्म हुआ जो केवल जलमें रहती है। फिर कछुएका जन्म हुआ जो जलथल दोनों में रहते हैं। फिर सूकर सिंहादि वन्य प्राणियोंका जन्म हुआ। विकासका अन्तिम परिणाम मानव जाति है। जैसा भी मानो लेकिन मनुष्यसे बढ़कर प्रशस्ततर कोई दूसरी सृष्टि अबतक नहीं हुई है।

प्रश्न यह उठा कि मनुष्यसृष्टिसे परमेश्वरको प्रसन्नता तथा आनन्द क्यो हुआ? और उतनेमें संतोष क्यों कर लिया? इसका उत्तर है"धिषणा" मनुष्य में विशेष है। धिषणा वाग् धिषेर्दधात्यर्थे धीसादिनीति वा धीसानिनीति वा" ऐसी यास्क निरुक्ति है। मनुष्यमें वाणी विशेष है। मनुष्यमें धारणा विशेष है। मनुष्यमें धी बुद्धिके लिये स्थान है। मनुष्य बुद्धिका सनन संभजन अवलम्बन करता है। 'बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा इस कोशके अनुसार सीधा

अर्थ धी-प्रज्ञा भी है। मनुष्यकी विशेषता आकार प्रकारसे नहीं, रुपसौंदर्यसे नहीं, किन्तु और किसी से है। शायद लोग समझते हैं कि काले बाल और गोरे चेहरेसे मनुष्य सुन्दर होता है, श्रेष्ठ होता है। सौन्दर्य एक कल्पित तत्त्व है। पशुओंको स्वसजातीय पशुमें सौन्दर्य दीखेगा। पक्षियोंको पक्षियोंमें। अफ्रिकन कहते हैं जितना अधिक काला हो उतना अधिक सुन्दर होता है। सफेद शरीर तो बिमारी है। सफेद गायकी अपेक्षा कपिला कितनी अच्छी होती है। मनुष्यकी विशेषता केवल शारीरिक संरचनासे नहीं और इन्द्रियोंकी विशेषतासे भी नहीं है। गिद्धकी आँखोंकी शक्ति इतनी अधिक है कि वह कोसों दूरकी चीजोंको देख लेता है। चीटियोंकी और श्वानोंकी घ्राणशक्ति मनुष्यों की अपेक्षा दस गुना ज्यादा है। शक्कर कहीं भी रखो चीटियां पहुँच जायेंगी। श्वान सूंघ-सूंघ कर चोर आदिका पता लगाता है। चातक जहरको देखकर पहचान लेता है। पहले समयमें राजा लोग चातकोंको पालते थे। भोजनमें जहर मिलाकर कोई मार न दे इस भयसे। जहर देखते ही चातककी आँखोंसे पानी गिरता है। मनुष्यकी महत्ता इन्द्रियोंको लेकर भी नहीं है। मनुष्यकी महत्ता है बुद्धिको

लेकर। मनुष्यकी महत्ता वाणीको लेकर है। उसीको यहांपर धिषणा शब्दसे बताया है।

धिषणा बोलना पर्याप्त नहीं है। कौनसी धिषणा? कैसी धिषणा? यह प्रश्न फिर उठता है। उपनिषदोंमें मानव योनिको रमणीय योनि तथा कूकर-सूकर आदिको कपूय योनि बताया है। वाक्य इस प्रकार है-

"अथ ह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् बाह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा ये अथ ये कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा

मन्त्रका पूर्वोक्त ही अर्थ है। पुण्यकर्मवाले ब्राह्मणादि पुण्ययोनिको प्राप्त होते हैं, बुरे कर्मवाले पापयोनि कूकर सूकर योनिको प्राप्त होते हैं। इस मन्त्रवाक्यमें रहस्यपूर्ण रीतिसे एक शब्द आया है। वह है कपूय योनिके रूपमें चाण्डालयोनिको कहना | चाण्डाल तो मनुष्य ही होता है।

कूकर सूकरके साथ इसका परिगणन क्यों किया? कूकरादिमें विशेष बुद्धि नहीं है| चाण्डाल भले नीच जातिका हो, पर है तो मनुष्य । विशेष बुद्धि उसमें भी है। इसका रहस्य यह है कि विशेष बुद्धिमात्रसे भी रमणीय योनि नहीं होती| चाण्डाल नीच बुद्धिका होता है। नीच बुद्धि, नीच कार्यकर्ता चाण्डाल कहलाता है।

"काकः पक्षिषु चाण्डालः पशूनां चैव कुक्कुरः ।

पापो मुनीनां चाण्डालः सर्वेषां चैव निन्दकः ॥"

ऐसा भी वचन आता है। काक और कुक्कुर मलभक्षी है अतएव मलिनमति हैं। पापी मुनि और निन्दक दूसरोंकी बुराईरूपी मलका भक्षण करते हैं। चाण्डाल एक जाति भी है। उक्त उपनिषद मन्त्रमें एक और बात ध्यान देने योग्य है। वह है- रमणीय योनिकी परिगणनामें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनको लिया। शूद्रको छोड़ा। इससे लगता है कि शूद्रयोनि भी कपूय भले न हो रमणीय तो नहीं ही । सो क्यों? इसलिये कि शूद्रकी भी मति कुछ मलिन होती है। उपनिषदमें जानश्रुतिकी कथा आती है। जानश्रुति जन्मतः क्षत्रिय था वह छकड़ेके नीचे बैठे रैक्वके पास

गया। हंस परस्पर जानश्रुतिकी प्रशंसा कर रहे थे तो एक हंसने कहा था कि अरे तुम लोग जानश्रुतिकी क्या प्रशंसा करते हो? छकड़ेके नीचे बैठे रैक्वके सामने ये कुछ भी नहीं हैं। यह सुनकर राजा जानश्रुति रैक्वके पास गया .था रैक्वने राजाको कहा- **अह हारेत्वा शूद्र गोभिः सह तवैवास्तु'** हारयुक्त गाड़ी और गायोंको भेंट देने तुम जो आये हो और विद्या ग्रहण करना चाहते हो इसे तुम अपने पास ही रखो तुम शूद्र हो तुम्हें विद्या नहीं देता हूँ। यहाँ प्रश्न हुआ कि जानश्रुति क्षत्रिय था। उसे शूद्र कैसे कहा। इसपर व्यासजी का कहना है -

"शुगस्य तदनादरश्रवणात्तदाद्रवणात् सूच्यते हि

जानश्रुतिने हंसोंसे अपना अनादर सुना तो उसको बड़ा शोक हुआ। उस शोकसे जानश्रुति आद्रुत हो गया, व्याप्त हो गया या अभिभूत हो गया। इसलिये 'शुगाद्रवणाच्छूद्रः इस व्युत्पत्तिसे वह शूद्र कहलाया। शूद्र सम्बोधन का मतलब यही कि तुम वेद विद्याके अनधिकारी हो। अतएव विद्या नहीं दी तो राजाने अधिक धनदारादि लाकर प्रदान किया। प्रथम राजाने सोचा था कि रैक्वके पास एक

अतिरिक्त विद्या छोटीसी होगी, जिसके लिये मैं छोटा हो गया। इससे शोक हुआ। अपनी समझके अनुसार उस छोटी विद्याको पानेके लिये कुछ गायें और सुवर्णादि दिया तो रैक्वने उसे ठुकराया। तब राजाको समझमें आया कि यह छोटी विद्या नहीं। बड़ी विद्या है। उसके लिये अधिक धनादि देना होगा। पहलेवाला शोक तो नहीं रहा कि एक छोटीसी बातको लेकर मैं छोटा हो गया। फिर भी थोड़ा शोक रह गया जिसको लेकर दुबारा रैक्वने 'शूद्र' करके सम्बोधन किया| किन्तु इतने दानसे राजा पवित्र हो गया था।

"ब्रह्मचारी धनदायी मेधावी श्रोत्रियप्रियः ।

विद्यया वैति विद्यां यस्तानि तीर्थानि षण्मम ॥

ब्रह्मचारी संवर्गविद्यायोग्य होता है। पुष्कल धन देनेवाला भी अधिकारी होता है, अत्यन्त मेधावी हो वह भी विद्याधिकारी है। जो वेदाध्ययन कर चुका हो वह भी अधिकारी है। अपना अत्यन्त प्रिय हो तो भी चलेगा। अपने पास जो अपूर्व विद्या है उसे देकर जो विद्या लेना

चाहता है वह भी अधिकारी है। इन छहोंको तीर्थ बताया है। भाष्यकारने यहां एक और रहस्य दिखाया है। प्रथम बार रैक्व पूछते हैं क्या इतने ही धनसे तुम अमूल्य विद्या पाना चाहते हो ? विद्या तो शुश्रूषा आदिसे प्राप्य है। इसलिये वापिस किया। परन्तु दूसरी बार भी तो शुश्रूषा आदि नहीं की। तब विद्या कैसे दी? तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन् की व्याख्या करते हुये कहा- 'तस्या दुहितुर्ह मुखं राजाने अपनी पुत्री को समर्पित किया था । "आत्मा वै पुत्रनामासि के अनुसार पुत्र या पुत्री अपना ही स्वरूप है। वह सेवा करती रहेगी तो स्वयंकृत शुश्रूषा के बराबर ही वह होगी। अस्तु तीर्थ होनेसे अधिकारी बन गया। फलतः राजा अब कपूय नहीं रहा।

यहां तक बतायी हुई कथाका सारार्थ यह है कि धिषणा मात्रसे सृष्टिकर्ता परमात्माकी प्रसन्नता नहीं। क्योंकि धिषणा भी दो प्रकारकी होती है। एक शूद्रादि धिषणा है। दूसरी इससे अन्य सत् धिषणा है। उसका नाम यहां दिया- 'ब्रह्मावलोकधिषणं" ब्रह्मदर्शन करनेमें समर्थ धिषणा उत्तम

मनुष्योंमें ही है। ब्रह्म शब्दके दो अर्थ है। एक परब्रह्म अर्थ है दूसरा शब्द ब्रह्म अर्थात् वेद अर्थ है। धिषणासे दोनों अर्थ प्राप्त होते हैं। धिष धातुका वाणी अर्थ महर्षि यास्कने बताया । वेदोच्चारणयोग्य वाणी जिसमें है वह ब्रह्मावलोकधिषण है। शूद्रमें दोनों नहीं हैं। जो शोकमोहाविष्ट होगा वह न वेदवाणीको ग्रहण कर सकता है और न ब्रह्मदर्शन ही कर सकता है।

इसपर एक प्रश्न होता है कि अर्जुन शोकमोहाविष्ट था तब वह भी शूद्र जैसा हो गया तो भगवानने उपदेश कैसे किया ? बल्कि शोकमोह को हटाने ही के लिये उपदेश होता है। उत्तर यह है कि किसीके हृदयमें शोकमोह बैठ गया है, आविष्ट हो गया है वही शूद्र है। जीवनभर वह रोता ही रहेगा| सत्पुरुषोंमें शोक मोह आगन्तुक होता है। खुशी स्थायी होती है। पामरोंमें खुशी आगन्तुक होती है। शोकमोह स्थायी होता है। इसलिये शूद्रकी व्याख्यामें "**शूगस्य तदाद्रवणात्**" बताया| आद्रवणका अर्थ है चारों ओरसे द्रवीभूत करना । जैसे धातु पिघलता है तो चारों

ओरसे पूरी तरह अन्दर अग्नि प्रविष्ट होती है। वैसे शोकाद्रवणका अर्थ है कि बुद्धिमें कोने कोनेमें प्रविष्ट होकर बुद्धिको पिघलाया। फिर बुद्धि कदाचित कठिन भी हो जाये फिर भी द्रुत (पिघली हुई) लाक्षामें प्रविष्ट रंगके समान वहां सूक्ष्मरूपसे शोकादि रहते ही हैं।

मुदमाप देवः बताया। न कि **हृदि संतुतोष** हर्षित हो गया, प्रसन्न हो गया, संतुष्ट हो गया ऐसा नहीं। **मोदमें और संतोषमें अन्तर है। प्रशस्तताबुद्धिसे जो आनन्द होता है वह मोद है। अलंबुद्धिसे जो आनन्द होता है वह संतोष है।** उत्तम कार्यसे मोद होता है। कृतकृत्यतासे संतोष होता है। एक आदमीको एक लाख रुपये मिल गये तो प्रसन्नता हो सकती है। संतोष नहीं होता। ब्रह्मीजीने या परमात्मा ने धिषणा को बनाया तो उनको प्रसन्नता हुई। किन्तु संतोष हुआ कि नहीं यह नहीं बताया। मनुष्यकी बुद्धि ब्रह्मावलोकनके लिये योग्य तो है। किन्तु फलोपधायक होना जरूरी नहीं है। एक चिनगारी पूरे जंगलको जलानेमें योग्य तो है किन्तु जलानेसे पहले खतम भी हो सकती है।

मनुष्यको बनाकर ब्रह्माजी को प्रसन्नता अवश्य हुई। किन्तु वह प्रसन्नता कायमी हुई की नहीं यह संदेह है। पूरी प्रसन्नता तभी हो सकती है जब वह फलोपधायिनी हो। परमात्मा पूर्ण प्रसन्न तभी हो सकता है यदि धिषणाका फल ब्रह्मावलोकन हो । धिषणा इस प्रकार फलोपधायिनी हो। बगीचेमें आमका पेड़ लगाया। लगाने के बाद जड़ जम गयी। नये पत्ते आने लगे तो लगानेवालेके मनमें प्रसन्नता अवश्य होती है। किन्तु पूरी प्रसन्नता नहीं मानी जा सकती। आमका फल पैदा करनेमें वह योग्य है। किन्तु कहीं कीड़ा लग गया, फल ही नहीं आया तो? वह लगानेवाला निराश हो जाता है। ब्रह्मावलोकन योग्य बुद्धि परमात्माने बनायी। किन्तु उसमें कीड़े लग गये । कामक्रोधादि कीड़े ही तो हैं। तब परमात्मा भी संभवतः निराश हो जाता होगा। अतः परमात्माकी पूर्ण प्रसन्नता ब्रह्मावलोकनरूपी फलकी उपधायिका बुद्धि हो तभी संभव है। परन्तु इतना काम परमात्माका नहीं है। फलोपधायक बनानेका काम हमारा है। मनुष्यका है। परमात्माने आँख दी। उससे परदोष देखना या भगवत्प्रतिमादि देखना हमारे अधीन है। तदर्थ आँखको

स्वच्छ निरोग रखना भी हमारा काम है। सुबह उठकर मुँह धोनेका काम हमारा है, परमात्माका नहीं| श्रोत्रसे परनिन्दा सुनो या वेदशास्त्रवाणी सुनो यह हमारे अधीन है। हमारा काम है। त्वगिन्द्रिय पाणीन्द्रियादिसे गुरुचरणस्पर्शादि करना या परदारस्पर्शादि करना हमारे अधीन है। इसी प्रकार बुद्धि को स्वच्छ, तन्दुरुस्त रखना हमारा काम है और उससे विषय चिन्तन करना या परमात्मचिन्तन करना हमारे अधीन है। अर्थात् **"मुदमाप देवः'** ब्रह्मावलोकधिषण मनुष्यको बनाकर परमात्मा प्रसन्न तो हुआ। अब उसे फलोपधायक बनानेका काम हमारा है। बुद्धिको फलोपधायक हमें ही बनाना होगा।

ब्रह्मावलोकनरूपी फलसे युक्त बनानेके लिये महान पुरुषार्थ करना होगा। उसके लिये आधिभौतिक उपायोंके साथ आध्यात्मिक तथा आधिदैविक उपायोंको भी करना होगा। आधिभौतिक उपाय तो सात्त्विक आहारादि है। जैसा अन्न वैसा मन यह प्रसिद्ध है सद्वार्ता श्रवण करो। सत्संग करो। सद्विचार रखो ये सब आधिभौतिक उपाय

है। परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। इसके लिये आधिदैविक शक्ति एवं आध्यात्मिक शक्ति संपादन करनी पड़ेगी। और वही मुख्य है। अन्नादि तो प्रायः प्रारब्धाधीन हैं। किन्तु आध्यात्मिक तथा आधिदैविक शक्ति संपादन करना प्रारब्धाधीन नहीं है। पुरुषार्थाधीन है। कौनसा तदर्थ पुरुषार्थ करना ? इस प्रश्नका ही उत्तर गायत्री मन्त्र है।

गायत्री मन्त्र उस बुद्धिको ही प्रेरित करने का उपाय है जिसे ब्रह्मावलोकधिषण बताया। मन्त्रका जाप, देवता ध्यान, अर्थानुसन्धान आदि सभी आध्यात्मिक और आधिभौतिक उपाय है। **धियो यो नः प्रचोदयात्"** का अर्थ है जो हमारी बुद्धिको प्रेरणा दे। यह कथन वस्तुतत्त्वनिरूपण मात्र है या प्रार्थनारूप है? केवल वह बुद्धिको प्रेरित करता है इस प्रकार वस्तुतत्त्वका निरूपण मात्र हो तो उसका कोई खास प्रयोजन नहीं है। वह हमारी बुद्धिको प्रेरणा दे ऐसी प्रार्थना हो तो वाक्यकी सार्थकता है। किन्तु उस पक्षमें भी परमात्मा समस्त बुद्धिको प्रेरणा देता ही है इसलिये प्रार्थना व्यर्थ ही होगी। बादल पानी

बरसा रहा है तब प्रार्थना करें कि हे बादल तू पानी बरसा दे तो यह प्रार्थना निरर्थक होगी। अतः केवल प्रेरणा मात्र अर्थ नहीं हो सकता। किन्तु विशिष्ट प्रेरणा अर्थ होगा। वस्तुतः प्रथम पक्षमें भी - अर्थात् वस्तुतत्व कथनमात्र है इस पक्षमें भी 'प्रेरयेत्' इतना न कहकर 'प्रचोदयात्" कहने का कुछ मतलब और ही निकलता है। प्रचोदनका अर्थ है उत्कृष्ट प्रेरणा । एक चोर अपने साथीको चोरी करनेके लिये प्रेरित करता है उसके उपाय चिन्तनके लिये प्रेरित करता है। उसके तौर तरीकोंको अच्छी तरह समझनेके लिये प्रेरित करता है। वह प्रेरणा जरूर है, किन्तु प्रचोदना नहीं है। असत् अर्थमें प्रचोदयतिका प्रयोग नहीं होता। जैसे भारी चोरके लिये प्रख्यात चोर नहीं कहा जाता। कुख्यात चोर कहते हैं। वैसे उसकी प्रेरणाके लिये भी प्रचोदयति प्रयोग नहीं होता। प्रयोजयति, प्रेरयति आदि प्रयोग ही होता है। तब यह प्रश्न उठेगा कि गायत्रीमें प्रचोदयात् क्यों कहा? **"स एव साधु कर्म कारयति, स एवासाधु कर्म कारयति** इत्यादि श्रुतिके अनुसार सत् असत् आदि समस्त कर्म ज्ञानमें परमात्मा ही कारक प्रेरक है। तब केवल सत्कर्म प्रेरकके रूपमें प्रचोदयात् शब्दसे उपस्थित करनेका अर्थ है कि

यहां सत्कर्मप्रेरणार्थ प्रार्थना है। इसको अर्थापत्तिगम्य अर्थ कहते हैं। तात्पर्य यह है कि चाहे वह वस्तुकथन हो चाहे प्रेरणार्थक, दोनों पक्षोंमें यहां प्रार्थना गम्यमान है। इसका विस्तार तो मन्त्र व्याख्यानावसरमें हम करेंगे।

प्रकृतमें हमें इतना ही कहना है कि यह गायत्री मन्त्र सदर्थमें प्रेरणा करने के लिये प्रार्थनारूप होने से यह विश्वहितकारी है। गायत्री मन्त्रके द्वारा परमात्मासे जब हम प्रार्थना करते हैं कि हे परमात्मा तू हमारी बुद्धिको प्रेरित कर दे, प्रचोदित कर दे तो परमात्मा ऐसी प्रेरणा करता है जिससे उस प्रार्थनाकारी की बुद्धि सत्कर्म करनेमें सदुपासना करनेमें एवं सद्ज्ञान संपादनमें प्रेरित हो जाती है।

देहरोगहरं सूर्यं भवरोगहरं हरम् ।

गायन्ती पातु गायत्री ताभ्यां प्रज्ञां प्रतन्वती ॥

मानव शरीर बनाकर परमात्मा प्रसन्न हुआ। क्यों? इसमें बुद्धिकी विशेषता है। ब्रह्मावलोकन योग्य बुद्धि इस समय

मानव शरीरमें ही है। दूसरे शब्दोंमें–मनुष्यमें मनुष्यत्व विशिष्ट बुद्धि ही है। उस मनुष्यत्वका उद्भावक गायत्री मन्त्र है। वह बुद्धिको प्रेरणा दिलाकर विशिष्ट बुद्धि उत्पन्न करती है। अत एव विश्वहितकारी है। बालकको मानव बनानेके लिये ही सर्वप्रथम उपनयन संस्कार कर गायत्री मन्त्रका उपदेश देते हैं। उसके जपसे, उसके अर्थचिन्तनसे प्रेरणा मिल जाती है। जिससे क्रमसे वह ब्रह्मावलोकनपर्यन्त फल पाता है, जो जीवनका चरम लक्ष्य है। उसीकी प्रार्थना **'धियो यो नः प्रचोदयात्"** से गायत्रीमें की गयी है। शास्त्रकार कहते हैं :

धियां प्रणोदिनीं देवीं गायत्रीं शिरसा सह ।

धारयन्नात्मविज्ञानं लभते नात्र संशयः ॥

बुद्धिके लिये प्रेरणादायिनी गायत्री को शिरके साथ धारण करनेवाला आत्मसाक्षात्कार पाता है। शिरकी व्याख्या आगे मिलेगी। "**शिरसा सह**" यह उपलक्षण है। प्रणव तथा व्याहृतियोंके साथ गायत्रीका धारण होता है। अतएव उपक्रममें द्व्यर्थक वाक्य हमने पढ़ा था - **"प्रणौमि व्याहरन् देवीं गायत्रीं शिरसा सदा"** इसका सीधा अर्थ है- गायत्री

देवीको व्याहरन्बोलता हुआ, जप करता हुआ, उसीको मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

दूसरा अर्थ है–**प्रणौमि**=प्रणवका उच्चारण करता हूँ। **व्याहरन्** = व्याहृतिको बोलता हूँ। **शिरसा**=गायत्री शिरोमन्त्रके साथ गायत्रीको बोलता हूँ।

गायत्री विश्वहितकारिणी किस प्रकार है? इस प्रश्न का उत्तर मिला बुद्धिप्रणोदना द्वारा बुद्धिको प्रेरित कर बुद्धिको प्रेरित करने पर किस प्रकार मनुष्यका हित सम्पन्न होता है? यह प्रश्न पुनः उठता है। यद्यपि सत्कर्म, सदुपासना आदिमें वह प्रवृत्त होता है, जिसकी बुद्धि सत्प्रेरित हुई है यह बात सामान्यरूपसे पूर्वमें बतायी किन्तु विशेषरूपसे कहना अवशिष्ट है। गायत्री मन्त्र तो बहुतसे लोग जपते हैं। किन्तु अन्य मनुष्यों की अपेक्षा गायत्री जपकारियोंमें खास कोई विशेषता देखनेमें नहीं आती। अतः सामान्यरूपसे कहने मात्रसे स्पष्टीकरण नहीं होता। और गायत्री जप करनेवालों में विशेषता क्यों नहीं दिखायी पडती यह भी जानना जरूरी है। जिस प्रतिबन्धसे वह

स्थिति बन गयी उसे हटाना भी तो अ भी तो आवश्यक है। अतः उस पर विचार अब करेंगे।

एक बार की बात है। **महर्षि पुनर्वसु** (चरक ऋषि) बैठे हुये थे। ध्यानमग्न थे। शिष्य अग्निवेश पासमें बैठे हुये थे। महर्षिने सहसा आँख खोली| ऊपर दृष्टिपात किया और कहने लगे अहा! महान् विनाश होनेवाला है।

अग्निवेश : कैसे?

पुनर्वसु :- हजारों लाखों ये रोग मर्त्यलोककी ओर बढ़ रहे हैं। मानव इन रोगोंसे पीड़ित होकर उभयतो भ्रष्ट होंगे। इहलोकसे भी और परलोक से भी।

आधिव्याधिशतग्रस्ता निरस्तज्ञानचक्षुषः।

पशुतुल्याश्चरन्त्येते देहमात्रैकदृष्टयः॥

मानसिक रोग आधि और शारीरिक रोग व्याधिसे जो एक दो नहीं सैकड़ों हैं लोग ग्रस्त हो रहे हैं। और होंगे। परिणामतः ज्ञानचक्षु इनकी लुप्त हो जायेगी । और पशुतुल्य होकर विचरण करेंगे। भक्ष्याभक्ष्य स्पृश्यास्पृश्य विचारसे रहित होंगे। इनकी दृष्टि देहमात्रपर टिकेगी। आत्म दृष्टि नहीं रहेगी।

समस्त धर्म-कर्म-ज्ञानादिके लिये प्रथम स्वस्थ शरीर चाहिये।

"**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**"

ऐसा अनुभवियोंका भी कहना है। शरीर अस्वस्थ होनेपर प्रायः मन भी अस्वस्थ हो जाता है। तब परमार्थ चिन्तन नहीं हो पाता। प्रबल शिरोवेदना हो रही हो उस समय यह रोगादि मिथ्या है इत्यादि उपदेश क्या काम कर सकेगा? कोई महापुरुष ही ऐसा होगा जो हमेशा निर्विकार रह सकता हो| किन्तु ऐसा पुरुष कृतकृत्य हो चुका होता है। उसको साधनकी अब अपेक्षा नहीं रहती है। साधनकी अपेक्षा जिसको हो उसको तो शरीरकी अस्वस्थता

साधनामें बाधक होती है।

अग्निवेश :-

ये रोग क्यों आने लगे? रोगोत्पत्तिमें क्या मूल है ?

पुनर्वसु :- पांचों भूत प्रकुपित हो रहे हैं। स्वस्थका अर्थ है स्व में स्थिति। स्वरूपमें स्थिति । विषमताका अभाव । वात-पित्त-कफ सम होते हैं तो शरीर स्वस्थ होता है, विषम हो जाते हैं तो अस्वस्थ हो जाता है। पञ्चभूततत्व स्वरूममें नहीं रहते। एक दूसरेपर आरूढ़ होकर उसे अभिभूत करते हैं तो विषमता आ जाती है। सामान्य विषमता तो होती है और आवश्यक भी है। अतएव सृष्टि चलती है। गुणसाम्यसे प्रकृति और गुणवैषम्यसे विकृति और सृष्टि होती है। किन्तु विषमता बढ़ जाती है तब अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अतिशीत-अशीत, अतिवात अवातादि होते हैं। पृथिवी पर उसीके कारण विषलतायें पैदा हो जाती हैं। विष जन्तु पैदा हो जाते हैं। अन्नमें, वृष्टिमें, हवामें, वृक्ष लता घास आदिमें विषाणुओंका प्रवेश हो जाता है। जल विषैला होने लगता है। वापी-कूपादि जलमें रंग

बदलने लगता है। वृष्टि जलमें यह परिवर्तन आने लगता है।

पुनर्वसु आगे कहने लगे कि इस विषमताके कारण वायुमें प्राणशक्ति की न्यूनता हो रही है। आध्यात्मिक प्राणशक्तिका वर्धन उसीसे होता है। दीर्घ जीवन के लिये प्राणशक्तिकी नितान्त आवश्यकता है।

अष्टमूर्ति शंकरके आठ शरीरों में पाँच तो पञ्चभूत ही है। अतः भूतप्रकोप रुद्रप्रकोप ही है। इनमें भी तीन मुख्य बताये हैं। प्रकोपको वेदोंमें इषु शब्दसे इंगित किया है। इषु माने बाण । रुद्राध्यायमें तीन मन्त्र आये हैं-

"नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः

ये ऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः

ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः"

आकाशमें वृष्टि रुद्रोंके इषु हैं। अन्तरिक्षमें वायु रुद्रोंके इषु हैं। पृथिवीमें अन्न रुद्रोंके इषु हैं। जलमें, वायुमें और अन्नमें दोष आता है तो वह नाशका कारण होता है इसलिये

इनको इषु बताया।

इसप्रकार के भूतवैषम्यसे शरीरमें भी विषमता आ जाती है। यहां भी पञ्चभूतों में वैषम्य आने लगता है। और विशेषतया तीनमें | तीन अर्थात् वे ही वात, पित्त और कफ

भूतेषु कुपितेष्वेषु स्वस्वकार्याक्षमत्वतः ।
कायोऽयं शीर्यतेऽस्निग्धमृज्जन्यघटवद् द्रुतम् ।

ये पञ्चभूत कुपित होते हैं तो अपना-अपना कार्य करनेमें अक्षम होते हैं। पृथिवी की धारण शक्ति है, जलकी जीवनशक्ति है, तेजकी स्फूर्तिशक्ति है, वायुकी प्राणनशक्ति है, आकाशमें श्रवण शक्ति है। ये सभी शक्तियां कमजोर पड़ जाती हैं तो शरीर शीघ्र ही जीर्ण हो जाता है। सूखने लगता है, स्फूर्ति नहीं रहती, श्वासकासादिसे प्राणशक्ति खत्म होती है, बहरापन आने लगता है, अन्धापन आ जाता है। सत्यादि युगमें लोग दीर्घायु होते थे। रामजीकी बारह हजार वर्ष आयु की या दशरथ जीकी साठ हजार

वर्ष आयुकी बात छोड़ दीजिये तो भी भीष्मपितामह, द्रोणाचार्यादि दो सौ डेढसौ वर्ष उमरमें जवानोंके साथ अपराजित युद्ध करते थे।

अग्निवेश :– क्यों पञ्चभूतों में प्रकोप होने लगा है? क्यों विषमता होने लगी है?

पुनर्वसु :-

इसलिये कि धर्मविप्लव होने लगा है। वर्णाश्रमियोंका धर्म नष्ट हो रहा है। यज्ञयागादि लुप्त होते जा रहे हैं। यज्ञादि कर्म परम श्रेयस्कर हैं।

"अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।

आदित्याज्जायते वृष्टिस्ततो ह्यन्नं ततः प्रजाः ॥"

अग्निमें डाली गयी आहुति सूक्ष्मरूपसे आदित्य किरणोंमें मिल जाती है। आदित्यकिरणोंसे ही पर्जन्य मेघ होता है। उससे वृष्टि होती है और प्रजोत्पत्ति होती हैं। यज्ञसे जो मेघ होता है, वृष्टि होती है, उससे उत्पन्न अन्नमें जीवनशक्ति विशेषरूपसे होती है। कृत्रिम खादसे अन्न भले अधिक हो,

पर जीवनशक्ति कम रहती है। पहलेके समयमें सर्वत्र नियमित वेदघोष होता था जो आकाश शक्तिको बढ़ाता था। होमादिसे अग्नि शक्तिकी वृद्धि होती थी। साथ ही जल शक्तिकी भी। रुद्राभिषेकादि भी जलशक्तिवर्धक है। इसलिये यह वचन प्रसिद्ध है -

"न तीर्थपादोदककर्दमानि

न वेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि ।

स्वाहास्वधाकारविवर्जितानि

श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥"

गुरु ब्राह्मणादि तीर्थरूप है। उनके चरणोदकसे गृह पवित्र होता है। वेदशास्त्रध्वनिसे अन्तरिक्ष पवित्र होता है। स्वाहा स्वधाकार रूपी होमादिसे अग्निकी पवित्रता और उसीके धूमसे वायुकी, वातावरणकी पवित्रता होती है। इनके अभावमें तो श्मशानतुल्य ही घर समझो। लोग ब्रह्मचारी बनकर ब्रह्मचर्यपालनके साथ . वेदाध्ययनादि सम्यक् नहीं करते। गृहस्थ सत्य अहिंसादि के साथ पञ्चयज्ञादि सम्पादन नहीं करते। वानप्रस्थ होकर तपस्या नहीं करते।

संन्यासी होकर संगपरित्यागके साथ ब्रह्मचिन्तनमें संलग्न नहीं रहते। इस प्रकार वर्णाश्रमधर्मविप्लव होनेसे भूतप्रकोप होता है।

अग्निवेश :-

यह धर्मविप्लव क्यों होने लगा? लोग क्यों धर्मच्युत होते हैं?

पुनर्वसु :-

लोगोंमें भोगासक्ति बढ़ गयी। उनका हृदय रागद्वेषकलुषित होने लगा। स्वर्ग-नरक-इह-परलोक- ईश्वर - गुरु आदिमें उनका विश्वास नहीं रहा। भोगासक्तिके ही कारण इन्द्रियसंयमका अभाव होने लगा| सन्ध्या अग्निहोत्रादि कर्मसे लोग विमुख होने लगे।

"अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः । प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

अनेक प्रकारके चित्तभ्रम होने लगे। लोग मोहजालमें फंसने लगे। ऐसे लोग कामभोगमें आसक्त एवं प्रसक्त होकर अशुचि नकरमें पड़ते हैं। मरणोत्तर जो नरक है सो है ही, इहलोक में भी नरक दर्शन होने लगता है। जवानी में प्रवेश होने से पूर्वही बुढ़ापा आ गया। जमाना था, जब ऋषि लिखते थे

"अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि सर्ववेदब्रह्मचर्यम्"

अड़तालीस वर्षतक चारों वेदोंके अध्ययनके लिये ब्रह्मचर्यपालन करते थे। अब तो बारह पन्द्रह वर्षमें ही बालक कामभोगासक्त होने लगते हैं। अड़तालीसतक तो बुढ़े ही हो जाते हैं।

अग्निवेश :-

भोगासक्ति बढ़नेमें क्या कारण है ?

पुनर्वसु :-

विचारहीनतासे होनेवाला चित्तका चाञ्चल्या| इन्द्रियां वैसे ही स्वयं चञ्चल है | पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः इस

प्रकार उपनिषत् मन्त्र ही कहता है। विचारशक्ति ही उन्हें संयममें ला सकती है। एक सामान्यज्ञान होता है। दूसरा वैचारिक ज्ञान होता है। प्रत्यक्षादिसे सामान्यज्ञान होता है | विचारसे कालान्तरीय परिणामज्ञान होता है। एक युवा पुरुषने एक युवती को देखा। उसके मनमें कामका उदय हुआ। वह देखने लगा कि कामोपभोगसे मुझे सुख मिलेगा - यह सामान्यज्ञान हुआ। एक मनुष्यने दूसरे के जेब में धन देखा। उसके मनमें लोभका उदय हुआ। वह देखने लगा कि इसे चुपकेसे लें तो मेरा बहुत काम बन जायेगा। यह सामान्य ज्ञान हुआ | एक आदमीने अपने विरोधीको देखा। उसे क्रोधोदय हो गया। उसने देखा इसे मार डालो तो कांटा निकल जायेगा। यह सामान्य ज्ञान है। केवल देखनेसे जो ज्ञान होता है, वह सामान्य ज्ञानसे आगे नहीं बढ़ता। प्रथम देखनेपर जो ज्ञान होता है वही पशुमें रहता है। 'पश्यति केवलमिति पशुः' पशु कामभोग में तुरन्त प्रवृत्त होगा। क्रोधमें दूसरे पशुको तुरन्त सींग मारेगा | लोभमें दूसरेसे छीनकर खायेगा। विशेष ज्ञान मनुष्यमें होता है। यह विचारसे होता है। मनुष्य भी कामी, लोभी, क्रोधी है। परन्तु विचारसे वह निवृत्त होगा| परदारगमनसे

पराघात हो सकता है। स्वशक्तिनाश हो सकता है। स्वधर्म एवं नीतिका नाश होता है। परधनके छीननेसे मार पड़ सकती है, जेल हो सकता है। अन्ततः ईश्वरीय सजासे कोई छूट नहीं सकता। क्रोधसे परघात करता है उसकी भी भविष्यमें वैसी ही गति होगी जो कामी और क्रोधीकी होती है। अतः ऐसा कार्य न करना चाहिये यह विचारजन्य विशेष ज्ञान है। इस विचार के अभावसे भोगासक्ति आदि होती है। मनुष्य पशुतुल्य होता है।

"अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्

विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्"

ऐसी उक्ति प्रसिद्ध है। वर्तमान अल्पसुख है। परिणाममें बहुत कुछ खोना पड़ जायेगा। उस अल्पसुख के लिये भारी नुकसान करनेवाला ही विचारमूढ़ है।

अग्निवेश :- क्या कारण है कि लोग विचारहीन होते हैं?

पुनर्वसु

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

विवेकशून्यता ही विचारहीन होनेमें हेतु हैं। अच्छा क्या-बुरा क्या? स्थायी क्या-क्षणिक क्या? सगुण क्या-सदोष क्या? यह विवेक हो तब आगे विचार चल सकता है। वेदशास्त्राध्ययनके विना, सत्संगके विना विवेक नहीं हो सकता। "**सत्सङ्गेन विना नैव विवेको जायते नृणाम्**"

(विनु सत्सङ्ग विवेक न होई) विना सत्संग, विना शास्त्राध्ययन विवेक नहीं हो सकता।

अग्निवेश :-

अविवेकसे लेकर विनाशपर्यन्त जो अनर्थ परंपरा सबका मूल निदान क्या है यह मैं जानना चाहूंगा (क्योंकि कारणपरम्परा और लम्बी हो सकती है।)

पुनर्वसु :-

प्रज्ञापराध ही मूल है। यहींसे पुनर्वसु अपना सूत्र प्रारंभ करते हैं। "**प्रज्ञापराधो मूलं सर्वरोगाणाम्**"

प्रज्ञाका अपराध ही समस्त रोगोंका मूल है। चाहे वह बाह्य रोग हो चाहे आन्तरिक रोग हो । चाहे वह शरीर रोग हो, चाहे भवरोग हो । प्रज्ञाके अपराधसे शास्त्र एवं संत पुरुषोंकी अवहेलना होती है। फलतः वह अविवेकी पशुतुल्य रहता है। प्रत्यक्षमात्र प्रमाणपर रहता है। उसमें गुणदोष विचार नहीं होगा। और उससे अविश्वास एवं भोगादि आसक्ति होगी। उससे पुण्यपापका अनुसंधानाभाव होगा। उससे धर्मत्याग और भूतप्रकोप होगा। परिणामतः शारीररोग और भवरोग स्थायी होकर 'पतन्ति नरकेऽशुचौ वर्तमानमें और मरणोत्तर भी नरकपात होगा।

"छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्

विवेक ही न रहा तो आगे विचारादि क्यों हो? उसमें रोगाणुका प्रवेश होता है। आत्मनिष्ठाका अभाव होता है। प्रज्ञा ही धी है। बुद्धि है। प्रज्ञापराधको दूर करनेके लिये ही गायत्री मन्त्र है। "धियो यो नः प्रचोदयात् गायत्री मन्त्रसे प्रज्ञापराध दूर होगा|

यह आधिभौतिक तरीकेसे विचार हुआ। अब आधिदैविक तरीकेसे भी विचार किया जाये। बुद्धिको प्रेरित करके गायत्री विश्वहित सम्पन्न कैसे करती है ? गायत्री जपसे बुद्धिको प्रेरणा मिलती है, और इसीके अर्थचिन्तनसे विवेक होने लगता है। फिर विचारादि क्रमसे वह विश्वहितकारिणी होती है। साधारणतया लोग जप करते हैं किन्तु अर्थानुसन्धान नहीं करते। और नियम विधियोंका पालन नहीं करते। इसलिये जप करते हुए भी सफल नहीं हो पाते | अतः आधिदैविक चिन्तन साथमें होना चाहिये।

गायत्री मन्त्रका अधिष्ठाता देवता सूर्य है। सूर्यके लिये यह प्रसिद्ध है कि

"आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'

आदित्यकी उपासनासे आरोग्यकी प्राप्ति होती है। तेजोमय सूर्यका चिन्तन करते हुए गायत्री मन्त्रकी जपात्मक उपासना करनेसे सर्वरोगनिवृत्ति होती है। गायत्री जप करनेवालोंमें क्या, जप करनेवाले जितने भी हैं, सबमें एक दोष आ जाता है। और वह यह है कि प्रथम कुछ दिन ध्यानपूर्वक भले कर लें किन्तु बादमें जप केवल

यान्त्रिक हो जाता है। मुखसे मन्त्रावृत्ति होती रहती है, हाथसे यन्त्रवत् माला फिरती जाती है, मन अपना अलग काम करता रहता है। ऐसा जप यद्यपि सर्वथा निष्फल नहीं है, शब्द अपना काम अवश्य करेगा किन्तु जो वास्तविक फल होना चाहिये वह नहीं होता। विधिपूर्वक अनुष्ठान हो तभी वह पूर्ण सफल होता है। गायत्रीका जप करते हुये सूर्यका ध्यान करें तो वह सूर्य भी बुद्धिको प्रेरणा करेगा| सूर्य शब्दका अर्थ बृहदारण्यक उपनिषदमें भाष्यकारने किया है

"सुष्ठु ईरणाद् रसान् रश्मीन् प्राणान् धियो वा"-

रसोंको, रश्मियोंको, प्राणोंको और बुद्धिको सम्यक् ईरण प्रेरण करता है अतः सूर्य नाम हुआ। सूर्यतापिनीमें भी

"प्रज्ञाकामः भास्करं भगवन्तमुपासीत "

बताया है। अतः सूर्योपासनासे प्रज्ञाप्राप्ति भी होती है। उससे भवरोगनिवृत्ति भी संभावित है। सविता का अर्थ भर्ग के साथ एकीभूत होकर हर भी होता है अर्थात्

परब्रह्म परमात्मा भी अर्थ है। उस परमात्मा का ध्यान करते हुये गायत्रीका जप किया जाये तो सर्वसंसारहरण समस्तानर्थ निवृत्ति भी होगी। इस प्रकार गायत्री सर्वथा विश्वोपकरिणी है। सामान्यजनको प्रज्ञापराधनिवृत्तिके द्वारा सकलरोगनिवृत्ति होनेसे स्वस्थ जीवन प्राप्त होगा। उपासकोंके लिये सूर्य भगवानकी प्रसन्नताके द्वारा सर्वरोगनिवृत्ति तथा प्रज्ञाप्राप्ति दोनों ही होंगी! और ज्ञानियोंको अज्ञानहरणके द्वारा सर्वानर्थनिवृत्तिरूप मोक्षका लाभ होगा। प्रथम प्रज्ञापराधनिवृत्ति के द्वारा होगा द्वितीय सूर्यदेवताप्रसादके द्वारा और तृतीय तत्वबोध की प्राप्ति के द्वारा |

"प्रज्ञापराधहरणीं चित्तनैर्मल्यकारिणीम् ।

धर्मार्थकाममफलदां गायत्रीं मोक्षदां भजे ॥

प्रचोद्य सारथिं बुद्धिं या संसारान्निवर्तयेत् ।

नयेच्च नँःपदं विष्णोर्गायत्रीं तामुपास्महे ॥"

यहां तक हमने यह देखा कि प्रज्ञापराधो हि मूलं

सर्वरोगाणाम् । " चाहे देह रोग हो, चाहे भवरोगा। सबका मूल प्रज्ञापराध है। उस अपराधसे छुटकारा पानेके लिये और मोक्षादि प्राप्त करनेके लिये गायत्री मन्त्र उपाय है। गायत्रीमन्त्र प्रज्ञापराधहरणपूर्वक परम गति प्रदान कैसे करता है? उसके लिये अन्य किस साधन की सहकारिता आवश्यक है ? इत्यादि प्रश्न पुनः अवशिष्ट हैं। प्रज्ञापराधका हरण एक तो स्वयं शक्तियुक्त पवित्र होनेसे होता है।

" गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी

गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ॥"प

इत्यादिरीति योगी याज्ञवल्क्यने तथा कूर्मपुराणादिमें बताया है। पापनाशादिसे चित्त निर्मल होता है, ज्ञानोदय होता है।

कठोपनिषदमें इस मानव शरीरका रथरूपकसे वर्णन कर बुद्धिको सारथिके रूपमें बताया है

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥

इत्यादि । यह आत्मा रथी है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है, मनः लगाम है, इन्द्रियां घोड़े हैं इत्यादि| इस रथसे गन्तव्य स्थान कौनसा है इसका भी निरूपण किया।

"विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।

सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ "

विज्ञान अर्थात् सद् बुद्धिको सारथि एवं संयत मनको लगाम बनाकर जो इस शरीररथसे आगे बढ़ता है वह मार्गको पूरा कर गन्तव्य स्थान परमात्मपदको प्राप्त होता है। यह मानव शरीर केवल एक यान नहीं है। यह रथ है। रम धातुसे क्थन् प्रत्यय जोड़ने पर रथ शब्द बनता है। रम्यते ऽत्र, अनेन इत्यादि विग्रह है। यान बोलते तो जाना हीं जाना अर्थ निकलता | भाषामें 'या' को 'जा' कर दिया। संसरण मात्र अर्थ आता | संसरण ही संसार है | चलना ही चलना वहां रहता है। रथ कहनेसे गन्तव्य स्थान पहुंचानेवाला ऐसा सामान्य अर्थ है ही, रमण साधन यह

भी अर्थ निकलता है। रम धातुसे ही राम शब्द भी होता है। 'रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः योगी जिसमें रमण करते हैं वह राम है। अभेदरूपसे रहकर योगी आनन्दित होते हैं। उसी आनन्दका साधन रथ है। वह आनन्द मोक्षरूपी आनन्द है। स्वरूपानन्द है। उसका साधन यह मानवशरीररूप रथ है। यह आत्मा रथी है, रथस्वामी है। यह इस रथके द्वारा गन्तव्यस्थान पहुंचकर आनन्द पा सकता है | गन्तव्य स्थान रसरूप है। 'र**स' ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति**' रस पाकर ही यह आनन्दित होता है। गन्तव्य स्थान पहुंचनेके लिये घोड़के रूपमें इन्द्रियां हैं।

"इन्द्रियाणि हयानाहुः" इन्द्रियोंको घोड़ा बताया है। क्या इन्द्रियोंसे अतीन्द्रिय रसतक पहुंचना संभव है? नहीं। तो फिर ? रथ भी तो गन्तव्य स्थान तक नहीं पहुंचता। प्रासादमें विश्राम कक्षतक पहुंचना है। क्या वहां रथ जाता है? रथ से उतरकर ही प्रासादमें प्रविष्ट होते हैं। शयनकक्षमें पहुंचते हैं। वैसे इस शरीरको भी त्यागनेपर ही विदेहकैवल्य प्राप्त होता है। हां, महलतक पहुंच सकते हैं। वहांके दिव्यसुगन्ध, दिव्यरूपादिका रथमें बैठे-बैठे भी

अनुभव कर सकते हैं। जीवन्मुक्तिसुख तो इस शरीरमें रहते-रहते भी मिल सकता है। वहांतक इन्द्रियां भी पहुंच सकती हैं।

"कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुः"

ऐसा बताया है। धीर पुरुष इन्द्रियोंको विषयोंसे परावृत्त कर आत्माकी ओर लगाते हैं। अतः घोड़ोंकी कोई समस्या नहीं है। समस्या है सारथिकी । सारथिको प्रशिक्षित होना आवश्यक है। सारथिको प्रेरित करना भी आवश्यक है।

सारथिको सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि जिसका वह सारथि है वह रथ है, घर नहीं, रथी भी नहीं। कोई ड्राइवर यह समझे कि यह गाड़ी घर है, रहने का स्थान है तो गलत होगा। कोई टेक्सीमैन अपनी प्राईवेट टेक्सीको घर समझकर उसीमें खाना पीना सोना शुरू नहीं करता। उसीमें रसोई बनाना शुरू नहीं करता वह गमनार्थ खरीदा है। कोई-कोई टेक्सीवाले बम्बई जैसे शहरोंमें टेक्सीमें ही सोते और विश्राम करते भी है। किन्तु उनको भी यह मालूम है कि यह घर नहीं है। यातायात का साधन

है। सेठ तो उसे साधनमात्र समझता है। परंतु शरीररूपी रथमें कुछ और ही बात होने लगी। इसको तो सारथि और रथीने अपना ही घर समझ लिया। गन्तव्य स्थान तक या घर तक पहुंचनेके बाद ही छोड़ना है। घर दूसरा ही है। वहाँ इससे उतरकर जाना है इस बातको भूल गये। शरीररूपी रथमें कुछ विशेषता है। टैक्सी चालू करो और चलाओ तो ही चलती है। इस शरीररथको चालू करनेकी जरूरत नहीं है। इसके इंजन के स्थान में इन्द्रियरूपी घोड़े हैं। वे स्वयं चेतनसे होनेसे चलते रहते हैं । इन्द्रियां अचेतन होनेपर भी चेतन जैसी हो गयी हैं। अचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।" यह स्वयं चलती है। 'विषयांस्तेषु गोचरान्| ये विषयोंकी ओर चलती रहती हैं। सारथि यदि सो गया तो ये घोड़े रथको खड्डेमें अवश्य ले जाकर गिरायेंगे। इस सारथिको तो सदा सचेत रहना होगा। साथ-साथ प्रशिक्षित भी। उसे रथको कैसे ले जाना, कहां ले जाना इन दोनोंका ज्ञान होना चाहिये । घोड़ोंको कैसे आगे बढ़ाना है ? कहाँ मोड़ना है? कहां रोकना और कैसे रोकना है इसका भी ज्ञान होना चाहिये। और यह सब करने का अभ्यास भी होना चाहिये । यद्यपि घोड़ोंको भी प्रशिक्षित करना आवश्यक है। किन्तु

यह काम स्वयं बुद्धिरूपी सारथि कर लेगा और प्रेरणा भी बुद्धि कर सकती है।

"यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ।

न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥

जो रथी सारथिरहित होगा, या जो सारथि विशिष्टज्ञानरहित होगा, प्रशिक्षित नहीं होगा प्रेरित नहीं होगा वह अमनस्क ही होगा। हाथ में लगाम रखेगा नहीं। लगाम छोड़कर बैठा रहेगा। और वह हमेशा अशुचि होगा। क्योंकि इन्द्रियां भटकनेवाली होंगी। वे ही तो विषयाहरणसे अशुचि होती है। वह उस परमपदको तो क्या प्राप्त होगा? असत् की ओर उसकी गति होगी। वह संसारकान्तारमें जा फंसेगा।

"यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।

सोऽध्वनः पारमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥

इसके विपरीत जो रथी सारथि सहित होगा या जो सारथि विशिष्टज्ञानवाला प्रशिक्षित होगा, प्रेरित होगा उसके हाथ में लगाम रहेगी। उसकी इन्द्रियां परमार्थकी ओर प्रत्यावर्तित होनेसे शुचि होंगी। वह गन्तव्य अध्वाका पार पायेगा जहां अपना घर है, जहाँसे फिर भटकना नहीं होगा।

इन सब विवरणोंका सारांश है बुद्धि सारथिको बराबर बनाये रखो। उसके लिये अत्यधिक सावधान रहना चाहिये। एक कारका ड्राईवर मुझे बोलने लगा कि गाड़ीमें बैठकर सेठ लोग क्या बोलते हैं यह हमें प्रायः पता नहीं रहता| क्योंकि हमारी सभी इन्द्रियां काम करती रहती हैं। आँखोंसे आमने-सामने, अगल-बगल सर्वत्र निगाह रखनी पड़ती है। नहीं तो एक्सिडेन्ट होनेमें देर नहीं लगती। कानसे दूसरी मोटरोंके हार्न आदिपर ध्यान रखना पड़ता है। कोई दरवाजा बराबर बंद न हो तो आवाजसे हम जान लेते हैं। गाड़ी गरम हो रही है, इंजन कैसा है यह त्वगिन्दियसे पता करना पड़ता है। कुछ अंदर जलने लगा तो सूंघकर मालूम कर लेते हैं। हाथसे हैंडल सम्भालो | पांवसे ब्रेक आदि सम्भालो। दूसरोंको संबोधित करनेके

लिये वाणीका भी उपयोग करना पड़ता है। प्रायः समस्त इन्द्रियोंको ठीक तरह से उपयोग करना पड़ता है। अत्यंत सावधानी रखनी पड़ती है। बुद्धिसारथिकी भी ऐसी ही बात है। प्रत्येक इन्द्रियों की गतिका उसे पता होना चाहिये। उनसे भी काम लेना है।

इस बुद्धि सारथिको प्रशिक्षण तथा प्रेरणा कहांसे, कैसे प्राप्त हो यह विचारविषय है। क्योंकि उसके बिना मूल्यवान मानव जीवन व्यर्थ होगा। पशुतुल्य होगा। इसके उत्तरमें कहा जा रहा है कि इसको प्रेरणा देनेवाली गायत्री है। इसको प्रेरणा स्वयं रथी नहीं दे सकता | वह तो बैठा है। जहां ले जाओ वहां जाता है। और अन्यत्र जाना चाहेगा तो भी उसके हाथ में कोई सत्ता नहीं है। राष्ट्रपतिके कार्यक्रम तो सचिवों के हाथ में होते हैं। उसके अनुसार ही राष्ट्रपति चलेगा। यद्यपि प्रशिक्षण सत्संगसे, शास्त्राध्ययन आदिसे हो सकता है। परंतु वह प्रायः शिक्षणमात्र होता है, प्रशिक्षण नहीं। नलपाक पुस्तक का अध्ययन या अनुभवियोंकी पाक वार्ताका सम्यक् श्रवण शिक्षण हो

सकता है। प्रशिक्षण नहीं। प्रशिक्षण वह है जो कार्यान्वयनमें समर्थ हो । नलपाक पढ़कर कोई रसोई नहीं बना सकता। इसी प्रकार सत्संगादिसे शिक्षण मिलेगा। किन्तु कार्यान्वयन सामर्थ्य तो आन्तरिक शक्तिके उद्भवसे ही संभव है। आन्तरिक शक्तिके उद्भव का साधन गायत्री है। शक्ति यद्यपि हमारे अंदर ही है, और उद्भावयिता परमेश्वर है किन्तु उसका उद्भव अर्थात् प्राकट्य गायत्रीसे होता है। इस बातको योगि याज्ञवल्क्यने सदृष्टान्त बताया है।

"गवां सर्पिः शरीरस्थं न करोत्यङ्गपोषणम्।

निःसृतं कर्मसंयुक्तं पुनस्तासां तदौषधम् ॥

एवं स हि शरीरस्थ: सर्पिर्वत्परमेश्वरः ।

विना चोपासनादेव न करोति हितं नृषु ॥ "

एक किसानके पास बड़ी दुधारु गाय थी। बीस किलो दूध देती थी। वह बिमार हो गयी। अंग सूखने लगे तो किसान वैद्यके पास गया | वैद्यने कहा- घीमें गुडूची (गिलोय)

मिलाकर गायको दो। किसान घरमें गया और उसे गुरुचके पत्ते, लता आदि खूब खिलाया। लेकिन गाय ठीक नहीं हुई। वह वैद्यके पास शिकायत लेकर आया। बोला कि आपकी दवाके बावजूद भी गाय मरने जा रही है। वैद्यने कहा क्या दवा तुमने खिलायी ? बोला घी और गुडूची वैद्यने पूछा दोनोंको किस प्रकार किस मात्रा में मिलाया? किसानने कहा मिलानेकी क्या जरूरत थी? गौ के अंदर दूध और उसमें घी है ही। अपने आप दोनों मिल जायेंगे। मात्रा का हिसाब हो ही नहीं सकता। क्योंकि उसके पेटमें जितना घी है सब मिलनेवाला ही है। वैद्य ने कहा तब गुडूचीका तत्व भी गायके शरीरमें मिलेगा। अरे भोंदू, दवा ऐसी नहीं होती। इसी प्रकार परमेश्वर हृदयमें है। वही बुद्धि का प्रचोदयिता है । 'धियो यो यहां यो का अर्थ परमेश्वर ही है। किन्तु गायत्रीसे प्रसन्न हुए विना प्रगट हुए विना वह बुद्धिकी शक्तिको प्रादुर्भूत नहीं करता। गायत्रीसे प्रसादित परमेश्वर ही प्रचोदयिता है, शक्तिदाता है।

दूसरा प्रश्न यह था कि गायत्री की उपासना करनेवालों में

भी वह चामत्कारिक शक्ति दिखायी नहीं पड़ती। उसका कारण क्या है। क्या उसके लिये अन्य सहकारीकी आवश्यकता है? इसका उत्तर सकारात्मक है। मन्त्रजपमात्र शक्तिकारक होनेपर भी सहकारीके होनेपर ही वह पूर्णरूपसे विकसित होता है। एक गायत्रीकी उपासना है। दूसरा अर्थज्ञान है। गायत्रीसे सूर्यकी उपासना, अन्य देवोंकी उपासना एवं परमात्माकी उपासना होती है। इसका निरूपण आगे होगा ही। किन्तु स्वयं गायत्रीकी भी उपासना होती है। उसको समझनेपर गायत्री का महत्वज्ञान होने से उसका प्रभाव बढ़ जाता है। मनु महाराज कहते हैं--

"त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत् ।

तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेदसे गायत्रीके तीन पादोंका दोहन परमेष्ठी प्रजापतिने किया| जैसे गायसे दूध दुहा जाता है, वही गायका सार है वैसे श्रुतिरूपी गायोंसे गायत्रीक्षीरका दोहन किया । (तदित्यृचः तत्सवितुर्वरेण्यं

इत्यादि ऋचाका)मतलब यह वेदों का सार है। अतएव पुनः कहा

"एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम् ।

सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥"

इस ॐकार अक्षरको और व्याहृतिसहित गायत्रीको प्रात:काल और सायंकाल सन्ध्या समयमें जप करने मात्र से तीन वेदोंके अध्ययनका पुण्य प्राप्त होता है। इस प्रकार समझकर उत्कर्षदृष्टि प्रथम गायत्री वर्णों में करनी चाहिये और पूर्वोत्तरीत्या गायत्रीके स्वरूप की महिमाका चिन्तन करना चाहिये। कूर्मपुराणमें एवं काशीखण्डादिमें बताया है।

"गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी ।

न गायत्र्याः परं जप्यमेतद्विज्ञानमुच्यते ॥"

गायत्री वेदोंकी जननी है। गायत्री समस्त लोकको पावन करती है। गायत्रीसे बढ़कर अन्य कोई जपयोग्य मन्त्र नहीं है। यह ब्रह्मसाक्षात्कारका साधन है। इसी प्रकार योगि

याज्ञवल्क्यादिका भी वचन पहले दिखाया जा चुका है। है।

एक कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है कि एक ब्राह्मण गङ्गाकिनारे बैठकर दीर्घ समयसे गायत्री जप कर रहा था। दूसरा एक श्माशानिक भी वहां कुछ दिनसे बैठने लगा। एक दिन जपके समय ब्राह्मणके कंधेपर रखा गमछा नीचे गिरा| ब्राह्मण बुर्जपर था। नीचे उतरनेपर ही कपड़ा ले सकता था। द्वितीय उत्तरीयके विना कर्म नहीं करना चाहिये। तब उसे उठाने वह आसनसे उठने लगा | श्माशानिक ने कहा कि आपकी गायत्री में इतनी भी शक्ति नहीं है कि आप उसे ऊपर मन्त्र-शक्तिसे उठालें। ब्राह्मणने कहा- मेरे पास वैसी शक्ति नहीं है। शूद्रने कहा-तब मेरा भूतमन्त्र गायत्रीसे श्रेष्ठ है। देखो मैं मन्त्रशक्तिसे उसे ऊपर उठाता हूँ। उसने भूतावाहन किया। उसने गमछेको तुरंत ऊपर उठाकर रख दिया। ब्राह्मणको इतना आश्चर्य हुआ कि सारी जिंदगी गायत्री जपकर बितायी, मुझे कुछ नहीं मिला। इस शूद्रका भूतमन्त्र ही इससे अच्छा है। ब्राह्मणने शूद्रसे भूतमन्त्र मांगा। शूद्रने भूतमन्त्र दिया और कहा

अडतालीस दिन श्मशानमें बैठकर इसका जप करो। तुम्हें भूत दर्शन देगा और वह वशमें आयेगा| ब्राह्मण रातको बारह बजे श्मशान में जाकर जप करने लगा। अडतालीसवें दिन आवाज आयी हे विप्र ! बताओ तुम्हें क्या चाहिये ? तुम कौन हो ? ब्रह्मणने पूछा। मैं तुम्हारा उपास्य भूत हूं, भूतने कहा। ब्राह्मण- मेरे सामने तो आओ, दर्शन कर लूं भूत मैं तुम्हारे सामने नहीं आ सकता हूँ। क्यों? तुम्हारे गायत्री मन्त्रका इतना उग्र तेज है कि मैं सामने आते ही भस्म हो जाऊँगा । ब्राह्मण ने कहा-तब तुम जाओ मेरी गायत्री ही ठीक है। ब्राह्मणने आकर गंगास्नान कर प्रायश्चित किया और पुनः गायत्री जपने लग गया।

तात्पर्यार्थ यही है कि गायत्रीकी महिमा अपार है। उसे समझो तो गायत्रीपर अटल श्रद्धा होगी और वह फलदायिनी होगी। गायत्रीके प्रत्येक अक्षरकी महिमा है और वह भी अपार है। प्रत्येक अक्षरके देवता है, देवियां हैं। अर्थ भी है। ऋषि हैं और छन्द आदि भी हैं। यद्यपि सम्प्रदाय भेदसे अनेक प्रकारसे ऋषि छन्द आदि हैं।

तथापि उपनिषत् के अनुसार यहाँ दिग्दर्शन मात्र कराते हैं। एक एक अक्षरके ऋष्यादि देखें:

"वसिष्ठश्च भरद्वाजो गार्ग्यश्चाप्युपमन्युवत् ।

भृगु:- शाण्डिल्य - लुहित-विष्णु-शातातपा अपि ॥

सनत्कुमारो व्यासश्च शुकः किं च पराशरः ।

पुण्ड्रक क्रतु-तक्षाच कश्यपोऽत्रिरगस्त्यवत् ॥

उद्दालकोऽङ्गिरा नाभिकेतुर्मुद्गल एव च ।

ऋषयोऽङ्गिरसश्चैव विश्वामित्रस्तथैव च ॥"

तत् का वसिष्ठ ऋषि । स का भरद्वाज । वि का गार्ग्य या गर्ग इत्यादि दृष्टव्य है।

"त्रिरावृत्या हि गायत्री त्रिष्टुप् च जगती तथा ।

छन्दांस्यनुष्टुप् पङ्किश्च बृहत्युष्णिक् तथाऽदितिः ॥

तत् का गायत्री छन्द, स का त्रिष्टुप छन्द, वि का जगती, तुर्

का अनुष्टुप, व का पङ्क्ति, रे का बृहती, ण् का उष्णिक्, यं का अदिति फिर उन्हींकी द्वितीय तृतीय आवृत्ति | इसी प्रकार चौबींस अक्षरोंके चौबीस देवताः

"अग्निः प्रजापतिसोम ईशानोऽर्को गृहेश्वरः ।

मित्रो भगोऽर्यमा चैव सविता त्वष्ट पूषणौ ॥

इन्द्राग्निर्वायुरेवापि वामदेवस्तथैव च ।

मित्रावरुणभ्रातृव्यविष्णवो वामनस्तथा ॥

विश्वदेवश्च रुद्रश्च कुबेरश्चाश्विनावपि ।

ब्रह्मा चेत्यक्षराणां स्युश्चतुर्विंशतिदेवताः ॥

पूर्ववत तत् का अग्निदेवता, स का प्रजापति देवता इत्यादि। चौबीस अक्षरों की चौबीस देवियां भी है। वे है प्रह्लादिनि, प्रज्ञा, विश्वभद्रा इत्यादिः

प्रह्लादिनी तथा प्रज्ञा विश्वभद्रा विलासिनी ।

प्रभा शान्ता च मा कान्तिः स्पर्शा दुर्गा सरस्वती ॥

विरूपा च विशालाक्षी शालिनी व्यापिनी तथा ।

विमला च तमोहारी स्यात् सूक्ष्मावयवापि च ॥

पद्मालया च विरजा विश्वरूपा तथैव च ।

भद्रा शिवा चतुर्विंशा देवी स्यात् सर्वतोमुखी ॥

उपनिषदों में पुष्पसादृश्यादि भी बताया है। अधिकस्याधिकं फलं इस न्यायसे जितना हो सके उतना अधिकाधिक सम्पादन करनेका प्रयास करना चाहिये। गायत्री के अर्थ के बारेमें आगे बताया ही जायेगा। परंतु आगे विवरण प्रसिद्ध पदार्थों को लेकर होगा। गायत्रीके प्रत्येक अक्षरोंका भी अर्थ विष्णुधर्मोत्तरादि पुराणों में बताया है। चौबीस अक्षरोंके चौबीस तत्व ही अर्थ वहां कहा गया है।

"कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च बुध्दीन्द्रियाणि च ।

पञ्च बुध्दीन्द्रियार्थाश्च भूतानां चैव पञ्चकम् ॥

मनो बुद्धिस्तथैवात्मा अव्यक्तं च यदुत्तमम् ।

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

चतुर्विंशतिरेतानि गायत्र्या अक्षराणि च ॥"

पाँच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच विषय शब्दस्पर्शादि, पांच भूत पृथिवीजलादि और चार है मन, बुद्धि, महत्तत्त्व और अव्यक्त | किन्तु पचीसवां मुख्यतत्त्व आत्मा परमात्मा कैसे छूट गया? छूटा नहीं। पूरी गायत्रीका परब्रह्म अर्थ है। व्यासवचन है

"न भिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह ।

सोऽहमस्मीत्युपासीत विधिना येन केनचित् ॥

गायत्रीको ब्रह्मसे भिन्न मत समझो | वही मैं हूं ऐसी उपासना करो। क्यों गायत्री और ब्रह्ममें भेद नहीं? गायत्री वाचक है, सविता वाच्य है। सविता ब्रह्म है।

'वाच्यवाचकसम्बन्धो गायत्र्याः सवितुर्द्वयोः ।

वाच्योऽसौ सविता साक्षाद् गायत्री वाचिका परा ॥

ऐसा काशीखण्ड एवं विष्णुधर्मोत्तरमें बताया है। और

वाच्यवाचककी एकता याज्ञवल्क्यने बतायी। तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि भी संगृहीत है।

"गायत्र्येव परो विष्णुर्गायत्र्येव परः शिवः ।

गायत्र्येव परो ब्रह्मा गायत्र्येव त्रयी यतः ॥"

ऐसा काशीखण्डमें बताया है। इसीलिये छान्दोग्यमें बताया **"गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किं च।"**

बृहदारण्यकमें प्रकारान्तरसे कुछ बातें बतायी हैं। गायत्रीका प्रथम पाद अष्टाक्षर भूमि अन्तरिक्ष और धौ (स्वर्ग) है। ऋक्, यजु, साम ये द्वितीय पाद है। प्राण, अपान, व्यान ये तृतीय पाद है। इत्यादि । इन सबका तात्पर्य है कि गायत्रीकी, गायत्रीके प्रत्येक पादकी और गायत्रीके प्रत्येक अक्षरकी अलग-अलग महिमा होनेसे बड़े ध्यानसे अक्षर, मात्रा, स्वर आदिका उच्चारण करते हुए जप करना चाहिये और अक्षर पदादिकी उपासना भी करनी चाहिये, जिससे गायत्रीजप शक्तिशाली हो । जप उपासना आदिके लिये मन्त्रोंके ऋषि, छन्द और देवता का जानना परम आवश्यक है। इसलिये प्रत्येक अक्षरके ऋषि

आदि हमने संक्षेपमें बताया। पूरी गायत्रीको हम पहले ही बता चुके हैं - विश्वामित्र ऋषि है, गायत्री छन्द है और सविता देवता है।

"बुद्धिं मेधां मतिं प्रज्ञां संप्रज्ञां प्रतिभामपि ।

प्रचोदयन्ती गायत्री पातु नो वृजिनार्णवात् ॥*

परमात्मा ने मानवको विशेष उपहारके रूप में बुद्धि दी। साथ ही इसके विकासका अवसर भी दिया। विकासके लिये जो अवसर दिया यही महत्वपूर्ण है। जन्मकालमें और उसके बाद भी काफी दिनोंतक मनुष्यबालकमें और अन्य प्राणियोंमें भी कोई खास अन्तर दिखायी नहीं पड़ता। अविवेक सबमें समान ही रहता है। किन्तु बादमें मनुष्यबालक प्रगति करता है। अन्य नहीं। हजारों वर्ष पहले गाय, घोड़े, कुत्ते, गधे आदि जैसे थे वैसे ही आज भी हैं। न उन्होंने कपड़ा पहनना सीखा और न घर बनाना ही। चिड़ियां यदि घोंसला बनाती है तो हजार लाख बरस पहले जिस प्रकार बनाती रही वैसे ही आज भी रिवाज है। किन्तु मनुष्य इस विषयमें बहुत आगे बढ़े। वैज्ञानिक उन्नति बहुत

कर गये और कर ही रहे हैं। अतएव यही कहा जाता है कि पशुओंमें बुद्धि नहीं होती। वैसे तो पशुओं में भी अन्तःकरण होता है। वे भी मालिकको पहचानते हैं। शत्रुमित्रको पहचानते हैं। देखते हैं, सुनते हैं। किन्तु सामान्य बुद्धि ही उनमें होती है। विशेष बुद्धि नहीं। मनुष्यमें विशेष बुद्धि होती है, जिसे गायत्री विकसित करती है।

बुद्धि के अनेक विभाग हैं। एक प्रगतिशील समझदारी है। इसीको बुद्धि कहते हैं। दूसरी मेधा है। ग्रहणपटुता जिसको कहते हैं। मेधावी छात्र है ऐसा कहते हैं। तीसरी मति है। मनन-शीलता जिसको कहते हैं। विशेष ज्ञान प्रज्ञा है। जिसके होनेपर विद्वान् कहलाता है। यहांतक तो लौकिक है। संप्रज्ञा और पराप्रज्ञा अलौकिक है। संप्रज्ञा संप्रज्ञात समाधिमें उत्पन्न ऋतंभरा प्रज्ञाको कहते हैं। वह श्रुतानुमानान्यविषय है। **"श्रुतानुमानाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्"** ऐसा पातञ्जल सूत्र है। अन्तिम पराप्रज्ञा है। जो अखण्डाकारवृत्तिरूप है। इन सबकी व्याख्या मन्त्र

व्याख्यानके अवसरमें विशेषरूपसे की जायेगी। कुछ अन्य भेद भी आगे बतायेंगे । इन सबको लेकर धियः यह बहुवचन है। हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करे ऐसा सुननेपर कितनी बुद्धियां मनुष्य की होती हैं यह प्रश्न उठता है। इन बुद्धियोंको प्रचोदित करनेकी यह प्रार्थना है। उसीसे मनुष्य आत्मरक्षा कर सकता है। इसके अभावमें मनुष्य आत्मघाती होता है। आचार्य शंकर आत्मघाती का स्वरूप कहते हैं

"लब्ध्वा कथंचिन्नरजन्म दुर्लभं

तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम् ।

यः स्वात्ममुक्तये न यतेत विद्वान्

स ह्यात्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात् ॥"

यह नरजन्म बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होता है। पुण्यसंचयपरिपाकसे ही मानव जन्म मिलता है। उसमें पुरुष जन्म और अधिक दुर्लभ है। यह सुनकर कुछ आधुनिक स्त्रियां कहती हैं कि आचार्य भी पक्षपाती थे क्या? पक्षपातकी बात नहीं| मण्डनपत्नीका आचार्यने महान् सन्मान किया था। किन्तु श्रुतिपारदर्शन स्त्रियों के

लिये दुष्कर है। पुरुष कभी भी विरक्त होकर जंगलमें जाकर तपस्या कर सकता है। स्त्रियोंके लिये प्राचीन कालमें भी यह संभव नहीं था। आज तो सुतरां नहीं है। प्राचीन कालमें ब्रह्मचारियों के मध्यमें कण्वाश्रममें शकुन्तला और उसकी सहेलियां निर्भय रहती थीं। शकुन्तला कोई छोटी बच्ची नहीं थी। परंतु कण्वाश्रमके ब्रह्मचारी कितने संयमी एवं सभ्य थे। क्या आजकी परिस्थिती ऐसी है? अस्तु। तपके विना और वैराग्यके विना श्रुतिपार ब्रह्म दर्शन नहीं हो सकता।

"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा । सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥"

ऐसा उपनिषद का मन्त्र भी है। सत्यके व्रतसे, घोर तपसे, सम्यग् ज्ञानसे और ब्रह्मचर्यसे ही यह आत्मा प्राप्य है। अस्तु । ऐसा पुरुषमानवशरीर प्राप्त होनेके बावजूद जो मनुष्य आत्माके मोक्ष के लिये प्रयत्न नहीं करता-ज्ञानसम्पादन नहीं करता वह अद्वहसे- असत् शरीरादिको ही आत्माके रूप में ग्रहण करनेके कारण आत्मघाती होता है। शरीरादि सत् नहीं है। **"कालत्रयेऽपि तिष्ठतीति सत्"**

तीनों कालोंमें जो एक रूपसे रहे वही सत् है। आत्मा एकरस है। अविकारी है। उसे शरीरादि रूपसे ग्रहण करना असद्ग्रह है। श्रीमद्भागवतमें इसी प्रकार आत्महननका लक्षण बताया है-

"नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं

प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारण् ।

मयानुकूलेन नभस्वतेरितं

पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥"

यह मनुष्य शरीर अति दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियोंमे भटकते-भटकते बड़ी कठिनाईसे ईश्वरकृपासे कोई पुण्य जागृत होता है तभी मिलता है। पशुपक्षियों में तो मरणकालमें पशुपक्षी संस्कार ही दृढ़ रहता है। वे फिर पशुपक्षी बनते रहते हैं। मनुष्यसंस्कारके जगनेका अवसर तो अतिन्यून है। हाँ परमात्मा स्वयं समस्त प्राणियोंके ऊपर अमुक समयके बीतनेपर एक एक बार कृपा करता है। वह मानव संस्कार जागृत करता है और पुण्यको भी जगाता है

तब प्राणीको यह मानव जन्म मिलता है। अतएव यह मानव शरीर अतिदुर्लभ है। परंतु हम सब मानवशरीरमे आये हुए हैं, हमारे लिये तो सुदुर्लभ कहां? हमे तो सुलभ हो चुका है। किन्तु ध्यान रखो। भवसागर पार करने का एकमात्र प्लव - नाव यही मानव शरीर है। अतएव यह मानव शरीर भोगार्थ नहीं, मोक्षार्थ है। सुकल्प है-सुसमर्थ है। हां, नावको आगे बढ़ानेके लिये कर्णधारको आगे करो। नाविकको आगे करो। वह है गुरु| गुरु शरणमें जाओ। गुरु ज्ञान देगा। गुरुका काम ज्ञान देना ही है। 'गुरु विनु ज्ञान न होई" यह प्रसिद्ध है। गायत्री आदिका उपदेश गुरुसे लेना चाहिये। उसका अर्थ गुरुसे सुनना चाहिये। 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् परमार्थज्ञान प्राप्त करने के लिये गुरुके पास जाना ही चाहिये। गुरुके पास ही जाओ। गुरुकृपा होनेपर शास्त्रकृपा होगी| गुरूपदेश से शास्त्र मिलेगा और उसीसे शास्त्र अनुकूल होगा। प्रश्न है ईश्वरकृपा भी तो चाहिये? अवश्य | किन्तु चिन्ता न करो। ईश्वर हमेशा कृपा की वर्षा करता ही रहता है। पात्र को सीधा रखो, घड़ा भर जायेगा| औंधा न रखो। एकने घडा उलटा रखा, दिनभर रातभर वर्षा होती रही। किन्तु घड़ा खाली का खाली रह

गया। उसको सीधा रखो । उसका मुँह ऊपरकी ओर रखो। ऊपरसे बारिश होती है। ईश्वराभिमुख चित्त रखो। गायत्रीमन्त्रादिजप करना ही ईश्वराभिमुख होना है। इन सबके होनेपर भी प्रमादके कारण जो भवसागर पार नहीं करता वह आत्मघाती है।

आत्मरक्षणके लिये गायत्री मन्त्र है। गायत्री मन्त्रके जपसे बुद्धि प्राप्त होगी, वह प्रचोदित होगी गायत्री के अर्थचिन्तनसे ज्ञानविज्ञान प्राप्त होगा। मानव जन्मकी सफलता के लिये, आत्मघातसे बचनेके लिये और परमार्थतत्त्वकी प्राप्तिके लिये गायत्रीका जप, अर्थज्ञानादि प्राप्त करना चाहिये।

"गायन्तं त्रायत इति गायत्री"

यह इसकी व्युत्पत्ति है। गायनका अर्थ प्रसिद्ध है षडजादि स्वरोंके आरोह-अवरोह के साथ उच्चारण करना| गायकोंके मण्डलमें सात स्वर प्रसिद्ध है। षडज (सा) ऋषभ (रे) गान्धार (गा) मध्यम (मा) पञ्चम (पा) धैवत (धा) निषाद (नी) ये सात स्वर हैं। गायत्री मन्त्र ऋग्वेद,

यजुर्वेद तथा सामवेद तीनोंमें आता है। सामवेदमें गीतिके साथ गाया जाता है। वहाँ सात स्वर होते हैं। ऋग्वेद तथा यजुर्वेदमें उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये तीन स्वर हैं। इन तीन स्वरोंसे गायत्री गायी जाती है। पाणिनीय शिक्षामें बताया है -

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

स्वरहीन और वर्णहीन मन्त्र मत जपो । कोई वर्ण बीचमें छूटना नहीं चाहिये। स्वर बराबर होना चाहिये। झूठा प्रयोग नहीं होना चाहिये जैसे श को ष, ष कोश आदि बोलना। उससे जप करनेवालों को हानि होती है।

एक व्यक्ति ने मुझे बताया कि महाराज! मैं रोज गायत्रीकी पचीस माला जप करता हूं। इतना बहुत हो गया ना महाराज! मैं प्रभावित हुआ। मैंने सोचा कि इसकी मेहनत प्रशंसनीय है। मैंने पूछा- कितना समय लगता है? उसने

कहा-पन्द्रह मिनिट | मैंने पूछा- क्या एक माला का पंद्रह मिनिट समय? उसने कहा-नहीं महाराज ! पूरी पचीस माला का। मैंने कहा- तब तो तुमने अपना उद्धार कर लिया। अरे! मुझे दस माला करनेमें एक घंटा लगता है। वह भक्त बोला- आप लोग पंडित हैं इसलिये आपको ज्यादा समय लगता है। मैंने कहा- जो पण्डित नहीं उसको तो इससे ज्यादा समय लगना चाहिये। मैंने अंदाजा लगाया कि वह मालाके मनकोंको सिर्फ सरकाता जाता होगा | वास्तविकता यह है कि तुम भले एक ही माला करो, किन्तु सावधानीसे करो। एक विद्यार्थी है। गणितकी परीक्षा दे रहा है। पन्द्रह प्रश्नोंमेंसे दसको हल करना है। दस-दस मार्क एक प्रश्न के हैं पूरे पन्द्रह प्रश्नोंको उसने हल किया। उत्तर गलत, रास्ता गलत | एक दूसरा विद्यार्थी है। उसने चारही प्रश्न हल किये। किन्तु सही। अब बोलो कौन पास होगा, कौन फेल होगा? हमने देखा एक मकान बारिशमें चूता था। हर साल एक बोरा सिमेंट और दस बोरा रेत मिलाकर डालता था। सब बह जाता था। एक साल आधी बोरी सिमेंट और दो बोरी रेत डाली | तो हमेशा की शिकायत समाप्त हो गयी। थोड़ा करो, किन्तु ठीक ढंगसे।

केवल संख्या पूर्ति से परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता।

बृहदारण्यकमें दूसरी व्युत्पत्ति बतायी है।

एषा गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता। सा ह्येषा गयांस्तत्रे प्राणा वै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद्यद् गयांस्तत्रे तस्माद् गायत्री नाम । स यस्मा अन्वाह तस्य प्राणांस्त्रायते ॥

गय शब्दका अर्थ है प्राण | प्राणोंकी रक्षा करने से इसका नाम गायत्री पड़ा| गयांस्त्रायत इति गयत्रः। गयत्र एव गायत्रः। (स्वार्थमें अण्) गौरादि होनेसे ङीष् प्रत्यय| प्राणोंकी रक्षा एवं इन्द्रियोंकी रक्षा गायत्री जपसे होती है। गायत्री जपसे दीर्घायुष्यादि प्राप्त होता है। पुराणों में कहा है"द्वे सन्ध्ये ह्युपतिष्ठेत गायत्रीं प्रयतः शुचिः । यस्तस्य दुष्कृतं नास्ति पूर्वतः परतोऽपि वा ॥" सुबह और शाम संध्या समयमें गायत्री जप करनेवालोंके पूर्वपाप और परपाप नष्ट होते हैं

"दशकृत्वः प्रजप्ता सा रात्र्यहोर्यत्कृतं लघु ।

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

तत्पापं प्रणुदत्याशु नात्र कार्या विचारणा ॥"

दस बार गायत्री जपो तो रात-दिन किये छोटे पाप नष्ट होते हैं।

"शतं जप्ता तु सा देवी पोपौघशमनी स्मृता ।

जप्ता सहस्त्रं सा देवी महापातकनाशिनी ॥

सौ जपो तो ढेर पाप नष्ट हो जायेंगे। हजार जपो तो महापातक भी नष्ट होंगे।

"अन्तर्जले त्रिरावर्त्य गायत्रीं प्रयतस्तथा ।

मुच्यते पातकैः सर्वैर्यदि न ब्रह्महा भवेत् ॥"

जलमें डुबकी लगाकर तीन बार गायत्री बोलें तो सर्वपापमुक्ति होगी यदि वह ब्रह्महत्याकारी नहीं हो तो। इत्यादि रीति गायत्रीकल्पमें बहुत कुछ बताया है।

गायत्री, सावित्री और सरस्वती ऐसे तीन नाम प्रसिद्ध है। कहीं कहीं इनको भिन्न रूपसे बताया है। परंतु कालभेद से एक ही के ये नाम अन्य महर्षियोंने बताया है

"गायत्री नाम पूर्वाह्णे सावित्री मध्यमे दिने ।

सरस्वती च सायाह्ने सैव सन्ध्या त्रिषु स्मृता ॥"

प्रातः कालमें उसका नाम गायत्री है। मध्याह्नमें सावित्री है और सायंकालमें सरस्वती नाम है। वही तीन सन्ध्या है। व्युत्पत्ति भेदसे भी एक एक नाम बताये है।

गायत्री प्रोच्यते तस्माद्गायन्तं त्रायते सदा ।

सवितृद्योतनात् सैव सावित्री परिकीर्तिता ॥

जगत्प्रसवितृत्वाच्च वाग्रूपत्वात्सरस्वती ।

जपकारीकी रक्षा करती है अतः गायत्री, सविताकी द्योतिका और जगज्जननी होनेसे सावित्री और वाणीरूप होनेसे सरस्वती नाम पड़ गये।

"गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किंच ।

वाग्वै गायत्री वाग्वा इदं सर्वं भूतं गायति च त्रायते च ॥"

इत्यादि वचन छान्दोग्यमें है। यह सब गायत्री है। क्योंकि वाक् ही गायत्री है। यह सारा जगत् वाक् है | 'वाचारम्भणं

विकारः वाणी से उत्पन्न हुआ। वाणी ही सबकी रक्षा करती है। बृहदारण्यकमें भाष्यकारने गायत्र्यवच्छिन्न ब्रह्मकी उपासना सर्वोत्तम उपासना बतायी है। उससे ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति बतायी। तदर्थ ही गायत्री वर्णन बृहदारण्यकमें आया। गायत्रीमन्त्रजपके साथ प्राणायाम करने का भी विधान आया है।

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।

त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥

अहोरात्रकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।

प्रणव और व्याहृतियों के साथ और अन्तमें शिरके साथ तीन बार कुम्भकमें गायत्री जपना चाहिये। वही प्राणायाम हैं। इतनेसे अहोरात्रकृत पाप नष्ट होते हैं। यहांतकका सारांश यही है कि शास्त्रानुसार बाल्य अवस्थासे ही गायत्री मन्त्रका जप करना चाहिये। केवल जप करना भी सार्थक है। उससे भी शक्ति प्राप्त होती है। दिव्यता आ जाती है। उसके बाद इसी मन्त्र के द्वारा सूर्योपासना करें एवं शिव विष्णु आदि देवोंकी भी उपासना करें। यथाशक्ति गायत्री

पुरश्चरणादि भी करें। फिर गायत्रीका महावाक्यार्थ ज्ञान गुरुमुखसे प्राप्त करे। उसमें सफलता पाने के लिये. गायत्र्यवच्छिन्न ब्रह्मकी भी उपासना करे। आदिसे अन्तपर्यन्त गायत्रीसहित प्राणायाम भी करते रहना चाहिये। इस विषय में मनु महाराज का कहना है-

"अह्ना रात्र्या च याञ्जन्तून् हिनस्त्यज्ञानतो यतिः ।

तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान् षडाचरेत् ॥"

दिन रातमें अज्ञानसे किये पापोंकी निवृत्तिके लिये स्नानोत्तर यति छः प्राणायाम करें। वह यदि गायत्रीसहित हो तो फिर क्या कहना है? यह पहले कह चुके।

"प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत् कृताः ।

व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥"

संन्यासीके लिये ऊपर बताया। अन्य भी ब्राह्मणादि यदि विधिवत् प्रणवादिसहित प्राणायाम तीन तक भी करें तो भी उसे परम तप समझो। इस प्रकार जीवनको गायत्रीमय बनाना चाहिये। अन्तिम लक्ष्य तो पदार्थशोधनपूर्वक

वाक्यार्थ ज्ञान जो अखण्डाकारवृत्तिरूप है उसे संपादित करना ही है। जिससे मानवजीवनका परमलक्ष्य परमपुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्ति होती है। अतः हम इस महामन्त्रकी व्याख्या करेंगे।" योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते ऐसा वेदवचन है।